गायत्री पञ्चदशी

लेखक
अरुण कुमार उपाध्याय

नाग पब्लिशर्स
११ ए.यू.ए. जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७, भारत

विषय सूची

भूमिका

हमारे शास्त्रों में गायत्री का महत्त्व काफी वर्णित है। इस ग्रन्थ का उद्देश्य उनकी पुनरुक्ति नहीं है। गायत्री एक छन्द है, तथा उस रूप में उसे सर्व प्रमुख कहा गया है- गीता में भगवान् कृष्ण ने छन्दों में अपने को गायत्री कहा है। इस छन्द में वेद के अधिकांश सूक्त हैं। उन्हीं में एक सूक्त गायत्री मन्त्र कहा जाता है। इसके साथ ॐ तथा ३ या ७ व्याहृतियों का भी प्रयोग होता है। यह गायत्री मन्त्र ही वेद माता कहा गया है। अथर्व वेद (१९/७१) में एक स्वतन्त्र सूक्त को ही वेदमाता कहा जाता है। किन्तु महर्षि दैवरात ने वाङ्माता रूप में ऋक् (१०/११४/४) को माना है। इस रूप में सृष्टि तथा शब्द रूप में वेद की उत्पत्ति कैसे होती है, इसकी व्याख्या कहीं नहीं है। सृष्टि का आरम्भ विन्दु, ओङ्कार, व्याहृति, तथा गायत्री पादों के द्वारा कैसे होती है, इसकी व्याख्या करने की चेष्टा की गयी है।

प्रख्यात वेदज्ञ तथा तान्त्रिक श्री भास्करराय भारती ने वरिवस्या-रहस्य में मन्त्रोंके १५ अर्थ कहे हैं। यही अर्थ वेद में भी कहा गया है। वेद के मुख्यत: ३ अर्थ माने जाते है- आध्यात्मिक, आधिदैविक, तथा आधिभौतिक। यह विश्वों के ३ विभाजन पर आधारित है-शरीर के भीतर का, आकाश में, तथा हमारे निकट की पृथ्वी का। आकाश में निर्माण के ५ चरण थे, जिनके अनुरूप यज्ञों का ५ प्रकार का विभाजन कई रूपों में होता है। इसके अनुसार सिख मत में ३ विश्व-सत्-श्री-अकाल, तथा ५ क्रियाओं के प्रतीक ५ ककार हैं। इनके द्वारा २ प्रकार के विभाजन का रहस्य स्पष्ट हुआ । दोनों प्रकार मिलाने पर १५ प्रकार के अर्थ वेद मन्त्रों के हैं। इन १५ अर्थों की व्याख्या वरिवस्या-रहस्य में है। इन अर्थों के अनुरूप अर्थ करना सम्भव नहीं लगा। अत: ब्रह्म के प्रतीक के रूप में जिन देवताओं की पूजा की जाती है, उन सभी का निर्देश एक ही गायत्री मन्त्र से कैसे होता है, इसकी व्याख्या की गयी है। यह सभी देवताओं के एकत्व के रूप में समझाया गया है। ब्रह्म एक ही है, पर उसे कई रूपों में देखा जाता है। कुरान में भी अल्लाह के १००, १०३, या १०८ नाम हैं। इनके अलग अलग अर्थ हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि अल्लाह कई हैं, पर एक ही को कई रूपों में देखा जाता है। वस्तुत: सभी रूप उसी के

हैं। पुराणों में भी भगवन के विभिन्न रूपों के १०८, या १००० नामों का पाठ वर्णितहै। विशेषकर विष्णु-सहस्रनाम के १००० नाम, मध्वाचार्य के मत से ऋग्वेद के १००० सूक्तों के नाम रूप में सारांश हैं।

इन सब तत्त्वों की चर्चा के लिये छन्द शास्त्र का सामान्य परिचय, तथा विस्तार से गायत्री के व्याहृति सहित शब्दों का अर्थ दिया गया है। इसके अतिरिक्त गायत्री के कई अन्य रूप हैं, यन्त्र, यज्ञ प्रक्रिया, आदि। कुरान में रोग दूर करने वाले जितने मन्त्र हैं, उन्हें पं. हनीफ शास्त्री, प्रध्यापक राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, एक ही गायत्री मन्त्र का रूप मानते हैं तथा सिर्फ गायत्री द्वारा ही चिकित्सा करते हैं।

वेदों की व्याख्या के लिये अपने युगों के व्यासों, वाल्मीकि तथा कृष्ण द्वैपायन ने रामायण तथा भागवत की रचना की थी। ये दोनो ग्रन्थ भी गायत्री मन्त्र की भी व्याख्या हैं, क्योंकि गायत्री ही सूक्ष्म रूप में वेद है। हम लोग श्रद्धा के कारण गायत्री मन्त्र के बड़े बड़े अर्थ करते हैं। जो शब्द नहीं हैं, उनका अर्थ करने की आवश्यकता नहीं है। छन्द के रूप में गायत्री के ४ चरण हैं, पर मन्त्र के रूप में ३ ही हैं। ३ चरण या खण्ड ३ वाक्यांश हैं, जिनका अलग अलग अर्थ कर उन्हें जोड़ा जाता है। यही मीमांसा दर्शन की प्रक्रिया है, अन्वय कर चरण नहीं तोड़ना चाहिये।

गायत्री का ज्ञान ही वेद पढ़ने का अधिकार देता है। यह प्रक्रिया यज्ञोपवीत में की जाती है। भरद्वाज गोत्र में मेरे पिता वेद अध्ययन की अन्तिम कड़ी थे। उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान के अतिरिक्त कई सन्तों ने कृपा कर मुझे इस ज्ञान का अधिकारी बनाया है-यथा प्रो. रामसजीवन त्रिपाठी (तिरुपति), स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती (पुरी पीठ के शमराचार्य), स्वामी जयेन्द्र सरस्वती (काञ्ची पीठ), जैन मुनि महेन्द्र कुमार जी (तेरापन्थ), जैन मुनि प्रसन्न सागर जी, त्रिदण्डी स्वामी (बक्सर के स्व. विष्वक्सेनाचार्य जी) आदि। इनकी कृपा के कारण पूर्ण वेदाध्ययन के बिना ही गायत्री की व्याख्या की धृष्टता कर रहा हूँ।

कटक, अरुण कुमार उपाध्याय

ओड़िशा दोल पूर्णिमा, वि.सं.२०६६ या २८-२-२०१०

अध्याय १

छन्दों का स्वरूप

१. वेद के पूरक अंग और उपांग -

ऋषियों ने जिस काल में वैदिक मन्त्रों का दर्शन या निर्माण किया उस समय उनका अर्थ समझने लायक विज्ञान और भाषा का विकास हो चुका था । बाद में विज्ञान लुप्त होने से उनका अर्थ समझने के लिये वेद के ६ अंग तथा उपांगों की रचना करनी पड़ी । षडंग पुरुष होने के कारण ६ दर्शन तथा ६ प्रकार की दर्श वाक् या लिपि हैं । उसी प्रकार वैज्ञानिक अर्थ समझने के लिये वेद के ६ अंग हैं । उपांग के रूप में ६ दर्शनों को ३ युग्मों में रखा जाता है -

न्याय- वैशेषिक, सांख्य-योग, मीमांसा-वेदान्त ।

पं. मधुसूदन ओझा ने ब्रह्म सिद्धान्त में ३ आस्तिक तथा ३ नास्तिक दर्शनों का विभाजन किया है -

क्षर पुरुष	सांख्य	चार्वाक
अक्षर	वैशेषिक	बौद्ध
अव्यय	मीमांसा(पूर्व, उत्तर)	जैन

न्याय तथा योग को सभी से सम्बद्ध माना गया है । पं मोतीलाल शास्त्री ने गीता विज्ञान भाष्य भूमिका में ६×६ दर्शनों का वर्गीकरण किया है । इसी प्रकार वेद के ६ अंग भी उनके उल्लेख क्रम के अनुसार ३ युग्मों में है [१] -

शिक्षा-कल्प, व्याकरण-निरुक्त, ज्योतिष-छन्द वेद के अंग और उपांग भी वेद ही है,[२] क्योंकि उनके बिना मन्त्रों का अर्थ नहीं होता । जैसे भूः, भुवः, स्वः आदि लोकों का वेद में उल्लेख है पर उनका विस्तृत वर्णन पुराणों में ही है । उनकी माप ज्योतिष तथा पुराणों में है । मापदण्ड का वर्णन छन्द शास्त्र में है । छन्द की ज्योतिष आधारित व्याख्या के बिना छन्दोमा स्तोम आदि का कोई अर्थ नहीं होता है ।

[३] ऋषियों ने मन्त्र का दर्शन किया इस अर्थ में वह अपौरुषेय है । इस मन्त्र के शब्दों का अर्थ अंगोपांगों से ही प्रकट है तथा उन्हीं ऋषियों द्वारा निर्मित है । उस प्रसंग में ही मन्त्र का शब्द रूप में दर्शन होता है । व्यक्तिगत रूप में ऋषि मन्त्रकृत हैं । अलग-अलग ऋषियों ने ब्रह्म का अलग अलग शब्दों में वर्णन किया है । व्यक्तिगत

रचना रूप में मन्त्र या उसका स्पष्टीकरण पौरुषेय है, किन्तु उनका एकत्व रचना रूप में मन्त्र या उसका स्पष्टीकरण पौरुषेय है, किन्तु उनका एकत्व ब्रह्म-सूत्र से स्पष्ट होता है । अतः ब्रह्म सूत्र के वेदान्तदर्शन द्वारा समझने पर वह एकत्व अपौरुषेय है ।

कालान्तर में अंगों के सीमित अर्थ हो गये । शब्दों की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय का प्रतिपादन करना निर्वचन तथा उसका शास्त्र निरुक्त है । यास्क मुनि रचित निरुक्त के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों या मन्त्र संहिता में भी जो निर्वचन मिलते हैं, वह भी निरुक्त हैं । शब्दों की उत्पत्ति और रूपान्तर वैज्ञानिक तथ्यों या क्रियाओं पर आधारित हैं । जैसे भौतिक या रसायन विज्ञान में कुछ गुणों तथा माप विधि के आधार पर शब्दों की परिभाषा दी जाती है, उसी प्रकार वैदिक ज्ञान-विज्ञान पर इनका निर्वचन आधारित है । उन निर्वचनों या परिभाषाओं के द्वारा ही वेद का अर्थ है । इसका पूरक व्याकरण है । शब्द के अवयवों मूल धातु, प्रतिपादिक, प्रत्यय उपसर्ग तथा अव्यय की व्याख्या और उनका संयोग ही उनका विषय है । शब्द समूह का १२ प्रकार से अर्थ मीमांसा है तथा उनका एकत्व उत्तर मीमांसा वेदान्त है । इस प्रकार पूरक युग्मों के अतिरिक्त भी अन्य अंगों तथा मन्त्र संहिता से इनका सम्बन्ध है । शिक्षा का अर्थ सिर्फ वर्ण उच्चारण शिक्षा नहीं है । व्याकरण सम्बन्धी पाणिनीय शिक्षा आदि वर्ण उच्चारण शिक्षा है । वर्ण-अक्षरों को जिस रूप में लिखा जाता है उसे क्या पढ़ा जायेगा तथा उच्चारण के अनुसार क्या अर्थ परिवर्तन होगा यह शिक्षा का विषय है । यज्ञ विज्ञान की शिक्षा भौतिक, रसायन विज्ञान या मन्त्र विज्ञान के प्रयोगों की तरह है । शिक्षा मिलने पर उनका प्रयोग कर व्यावहारिक कार्य करना कल्प है । उदाहरणार्थ तैत्तिरीय उपनिषद् के तीन खण्डों में प्रथम भाग शीक्षा-वल्ली (शीक्षा - शिक्षा सम्बन्धी, वैदिक रूप) है । ५ अधिकरणों अध्यात्म, अधिदैव, अधिज्योतिष, अधिभौतिक, अधिविद्या तथा दिशा और लोकों की व्याख्या है ।

विश्व की वैज्ञानिक व्याख्या, लोकों का आकार, गति आदि की व्याख्या ज्योतिष है । अतः ज्योतिष को 'चिति' कहा गया है । इनका मापदण्ड या देश-काल-दिक्-पात्र- की माप इकाइयाँ और परिमाण की इकाइयाँ छन्द है । यह चिति की माप का आधार तथा उनकी परिणति भी है, अतः इसे विचिति कहा गया है ।[१,४]

(२) छन्द का अर्थ, निर्वचन और वेदार्थ में प्रयोग -

छन्द आधारित दर्शन नासदीय सूक्त (ऋक् १०/१२८) के प्रथम मन्त्र में आवरण

वाद का उल्लेख 'किमावरीवः' शब्द से है ।[५] इसमें कुल दस वाद या १० प्रकार से सृष्टि उत्पत्ति की व्याख्या है, जिसका विस्तृत वर्णन पं.मधुसूदन ओझा ने दशवाद रहस्य तथा अलग-अलग वाद-पुस्तकों में किया है । सृष्टि की उत्पत्ति समरूप अविच्छिन्न रस के आवरणों द्वारा विभाजन से हुयी है । आवरण ही छन्द है जिसके तीन तत्त्व हैं[६] -

वय-वस्तु का उपादान या सामग्री वय है । यह प्राण के रूपान्तर हैं । वयोनाध-वस्तु की परिच्छेद सीमा है । यही छन्द है । यह भी प्राण है । वयुन-वस्तु के अस्तित्व का विज्ञान वयुन है - इसकी सामग्री का परस्पर सम्बन्ध तथा सीमा के बाहर के पदार्थ से विभेद है । छन्द के मूल धातु -

(१) चदि (चन्द) आह्लादने, दीप्तौ च (पाणिनि धातु १/५६)

(२) छद संवरणे (१०/२४८) आच्छादित करना ।

(३) छद अपवारणे (१०/२६०) स्वरित, १०/३६२ अदन्त)-हटाना, छिपाना

(४) छदि (छन्द) संवरणे (१०/४६)। पं. युधिष्ठिर मीमांसक ने छदि (छन्द) को ही मूल धातु माना है (वैदिक छन्दो मीमांसा- रामलाल कपूर ट्रष्ट-अध्याय १)

छन्द के वैदिक निर्वचन - वस्तु का सीमा द्वारा अवच्छेदन ही छन्द है ।[७] सीमा से आवृत होने के कारण वस्तु उसके बाहर नहीं जाती है । पं. मधुसूदन ओझा ने छादन के ११ विषयों का वर्णन छन्दः समीक्षा में किया है -[८]

१. उपसंव्यान (भीतरी आवरण या वस्त्र), २, पर्याधान (बाहरी आवरण या वस्त्र) ३. चर्चितक (बाहरी लेप, विचारण), ४. अवरोध (बाधा), ५. व्याप्ति (विस्तार या माप), ६. दूषितकरण, ७. स्वरूप करण ८. ऊर्जन (गति या शक्ति देना), ९. विविता (क्षेत्र का कुछ भाग अलग करना), १०. गोपन (छिपाना), ११. अन्तर्धान (लोप, अदर्शन)।

छन्द के पर्यायों की व्युत्पत्ति -

१. आवृति, संवृति-आ, सम् उपसर्ग + वृञ् वरणे+ क्तिन् । आवरण, संवरण से रूप, भाव होता है, वरण अर्थ भी है ।

२. तन्त्रण - तत्रि कुटुम्बधारणे (धातु १०/१३५ सायण) या तत्रि धारणे (चन्द्र १०/६५) धारण या टिकाये रखना ।

३. अवच्छिति - अवपूर्वक छेदने से क्तिन् प्रत्यय । अखण्ड या असीम को खण्ड या सीमा बद्ध करना ।

४. चन्दन - चदि ह्लादने दीप्तौ च (१/५६) पद्य-बद्धता या वस्तु के स्वरूप की आह्लादकता । उणादि में चन्देरादेश्च छः से छन्द हुआ है । चदि कान्तिकर्मा (यास्क) है, कान्ति, इच्छा, गति आदि अर्थ में भी है अतः छन्दों से वस्तु की गति है । ओझा जी के देवता निवित् तथा युधिष्ठिर मीमांसक के वैदिक छन्दो मीमांसा में चदि धातु का ग्रहण नहीं है । चदि का सम्भवतः निपातन से छदि होगया है (चड्ढी-कच्छा)।

५. हरिदान - इन्द्र के अश्व हरि हैं । इन दो हरियों से मास के दो पक्ष होते हैं । यह ऋक् साम भी हैं - ऋक् सामे वै हरि (शतपथ ब्रा. ४/४/३/६)। इन्द्र वय है उसके दो सीमा-विन्दु हरि हैं, उनके दान (काटने या देने से) सीमा बद्ध छन्द या वयोनाध हरिदान होता है । हरिज (Horizon) का अर्थ क्षितिज भी होता है

वेद में छन्दों के प्रयोग-छन्दों को वेद में पशु, व्रज गोस्थान, सूर्य रश्मि, अश्व, प्रजापति का रथ, अग्नि के सात धाम, या अग्नि का तनू (शरीर), या वेद भी कहा गया है । अर्थों का समन्वय - जो दीखता है वह पशु है, छन्द या आवरण में सीमित रूप दीखता है । निर्माण या भोजन सामग्री अन्न है, वह भी कई टुकड़ों में बंटा है । माप के लिये गति की आवश्यकता है, मापदण्ड लेकर क्रमशः १,२,३... माप के साथ आगे बढ़ा जाता है, अतः छन्द गति है तथा गति का स्थान ब्रज है । सूर्य रश्मि से भी गति या दूरी की माप है, अतः रश्मि या गो तथा उसका स्थान गति है । जैसे १ त्रुटि (सेकण्ड का ३३,७५० भाग) में प्रकाश जितनी दूर जाता है वह योजन है । सभी लोक, धाम, या शरीर विस्तृत सोम के सधन रूप अग्नि हैं, उनका शरीर छन्द या आकार प्रकार वाला है । सम्पूर्ण विश्व में पिण्ड की माप, गति, महिमा ही वेद त्रयी है, ये तीनों तथा उनका मूल अनन्त छन्द रूपी अथर्व भी छन्द है । अतः छन्द वेद हैं । गति कारक रूप में छन्द अश्व भी हैं ।

छन्दों का वेदार्थ में प्रयोगः -

(१) वाक् या अक्षरों का परिमाण छन्द हैं ।[१०] यह गायन और काव्य में उपयोगी होने के अतिरिक्त वाक्य खण्डों का भी निर्देश करता है । वाक्य एक छन्द होता है, पूर्ण अर्थ के वाक्यांश छन्द के पद हैं । बड़े छन्दों में एक पद में भी एक या दो यति देकर विभक्त किया जाता है । छन्द, पद और यति के बाद ही शब्दों का अन्वय कर उनका अर्थ निर्देश होता है ।

(२) देश और काल की सीमा का निर्देश- पिण्डों का आकार छन्दों से निर्दिष्ट होता है । उनका परिवर्तन काल सापेक्ष है अतः वह भी छन्दों पर आधारित है । वस्तु

के अवयवों की संख्या, माप संख्या आदि की माप भी छन्दों से होती है ।

(३) छन्दों का वर्गीकरण और रूप-

अग्नि की ७ जिह्वा के कारण ७ लोक, ७ अर्चि, सात स्वर आदि हैं ।[११] सबकी माप ७ छन्दों से है । संगीत के ३ सप्तकों की तरह इसमें भी ३ सप्तक हैं । उनके पूर्व माप दण्ड के आधार रूप ५ मा छन्द है । हर छन्द में ४ पद हैं और प्रति पद अक्षरों की संख्या १-५, ६-१२, १३-१९, २०-२६ है ।

प्राग् गायत्री पञ्चक -ग्रन्थों के अनुसार नाम भेद [१२]

पादाक्षर	कुल अक्षर	ऋक् प्रातिशाख्य	उपनिदान सूत्र	नारद-शास्त्र	तैत्तिरीय ब्राह्मण (३/३/१)
१	४	मा	उक्ता	कृति	मा
२	८	प्रमा	अत्युक्ता	प्रकृति	प्रमा
३	१२	प्रतिमा	मध्या	संकृति	प्रतिमा
४	१६	उपमा	प्रतिष्ठा	अभिकृति	अस्त्रीवि
५	२०	समा	सुप्रतिष्ठा	आकृति	विराट्

प्रथम सप्तक- बृहती छन्द / द्वितीय सप्तक-अति छन्द

पादाक्षर	कुल अक्षर	छन्द	पादाक्षर	कुल अक्षर	छन्द
६	२४	गायत्री	१३	५२	अतिजगती
७	२८	उष्णिक्	१४	५६	शक्वरी
८	३२	अनुष्टुप्	१५	६०	अतिशक्वरी
९	३६	बृहती	१६	६४	अष्टि
१०	४०	पंक्ति	१७	६८	अत्यष्टि
११	४४	त्रिष्टुप्	१८	७२	धृति
१२	४८	जगती	१९	७६	अतिधृति

तृतीय सप्तक- कृति छन्द-

पादाक्षर	कुल अक्षर	छन्द(पिंगल)	निदान सूत्र
२०	८०	कृति	सिन्धु
२१	८४	प्रकृति	सलिल
२२	८८	आकृति	अम्भस्
२३	९२	विकृति	गगन
२४	९६	संकृति	अर्णव
२५	१००	अभिकृति	आपः
२६	१०४	उत्कृति	समुद्र

छन्द की अक्षर-संख्या में ४-४ का अन्तर होने के कारण २ अक्षर कम से लेकर २ अक्षर अधिक तक वही छन्द माना जाता है-

२ अक्षर कम=विराट्, १ अक्षर कम- निचृद् ।

१ अक्षर अधिक= भूरिक्, २ अक्षर अधिक= स्वराट्।

ये मुख्य भेद आर्षी कहलाते हैं । इसके अतिरिक्त ७ अन्य प्रकार से वर्ग हैं जिनका कारण स्पष्ट नहीं है ।

छन्द	दैवी	आसुरी	प्राजापत्या	आर्षी	याजुषी	साम्नी	आर्ची	ब्राह्मी
गायत्री	१	१५	८	२४	६	१२	१८	३६
उष्णिक्	२	१४	१२	२८	७	१४	२१	४२
अनुष्टुप्	३	१३	१६	३२	८	१६	२४	४८
बृहती	४	१२	२०	३६	९	१८	२७	५४
पंक्ति	५	११	२४	४०	१०	२०	३०	६०
त्रिष्टुप्	६	१०	२८	४४	११	२२	३३	६६
जगती	७	९	३२	४८	१२	२४	३६	७२

इनमें बृहती छन्दों तक के ही वर्ग हैं। किन्तु पतञ्जलि के निदान सूत्र के अनुसार अतिछन्दों के भी ४ प्रकार के वर्ग हैं ।

छन्द	दैवी	आसुरी	प्राजापत्या	आर्षी
अतिजगती	८	८	३६	५२
शक्वरी	९	७	४०	५६
अतिशक्वरी	१०	६	४४	६०
अष्टि	११	५	४८	६४
अत्यष्टि	१२	४	५२	६८
धृति	१३	३	५६	७२
अतिधृति	१४	२	६०	७६

छन्दों का रूप-[१३]

छन्द	रूप	देवता
मा	पृथिवी	अग्नि
प्रमा	अन्तरिक्ष	वायु
प्रतिमा	द्यौ	सूर्य
अस्रीवि	दिशा	सोम
गायत्री	अजा	वृहस्पति
त्रिष्टुप्	हिरण्य	इन्द्र
जगती	गौ	प्रजापति
अनुष्टुप्	आयु	मित्र
उष्णिक्	चक्षु	पूषा
विराट्	अश्‍व	वरुण
बृहती	कृषि	पर्जन्य
पंक्ति	पुरुष	परमेष्ठी

प्राग्-गायत्री-पञ्चक माप का आधार हैं । एक अर्थ है कि सांख्य दर्शन के अनुसार ५ तन्मात्रायें हैं, अर्थात् ५ मूल इकाइयों से यान्त्रिक विश्‍व की माप हो सकती है । द्वितीय अर्थ है कि माप की मूल इकाई मा या पृथिवी है । उससे बड़ी इकाई प्रमा है । प्रमा का उदाहरण जैन ज्योतिष में मिलता है । ५०० योजन को प्रमाण योजन कहा गया है । भागवत-विष्णु आदि पुराणों में इसी प्रमाण योजन के अनुसार अन्तरिक्ष लोकों की माप है ।[१४] प्रतिमा सूक्ष्म रूप हैं और छोटी इकाइयाँ है । अस्रीवि मूल इकाइयों के संयोग से बनी इकाइयाँ हैं । तृतीय अर्थ है कि मा लम्बाई की माप, प्रमा गति (वायु) या समय माप, प्रतिमा उर्जा (द्यौ, सूर्य) या पदार्थ की माप, अस्रीवि विद्युत् चुम्बकीय गुणों तथा परस्पर सम्बन्ध की माप हैं । यह पहले अर्थ के समान है ।

बृहती छन्द[१५]-	अर्थ	बृहती छन्द	अर्थ
गायत्री	ब्रह्मवर्चस	पंक्ति	यज्ञ
उष्णिक्	आयु	त्रिष्टुप्	इन्द्रिय,वीर्य
अनुष्टुप्	स्वर्ग	जगती	पशु
बृहती	श्री, यश	विराट्	श्री, अन्नका आयतन

इसमें मुख्यतः गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती लोकों की माप हैं । सौरमण्डल के भीतर

गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् विभिन्न क्षेत्रों की माप हैं । आकाश-गंगा क्षेत्र तक गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती हैं । सौरमण्डल की माप ऋक् (१०/१३०/४,५) में है । अतिछन्दों को आयतन कहा गया है ।[१६] गायत्री क्षेत्र का आयतन धृति-अतिधृति होंगे यह पृथ्वी को मापदण्ड मान कर दो के घातों में माप करने से होगा । कृति छन्द कणों की माप है ।[१७]

४. छन्दों के अन्य रूप - त्रिविध रूप

छन्द	गायत्री	त्रिष्टुप्	जगती
पदार्थ [१८]	आग्नेय	ऐन्द्र	विश्‍वेदेव
वर्ण [१९]	ब्राह्मण	क्षत्रिय	वैश्य
पदार्थ रूप [२०]	ओषधि	वात	आपः

गायत्री के विविध रूप - १) वैश्‍वानर अग्नि - शरीर का आकार [२१] त्रिपाद गायत्री के ८ अक्षरों के अनुसार ८ प्रादेश = $८ \times १०.५ = ८४$ अंगुल है ।

(२) पार्थिव गायत्री [२२] - अप् के क्रमशः ८ रूपान्तर हैं - १. अप्, २. फेन, ३. ऊषः(क्षार), ४. सिकता(बालू), ५. शर्करा (रेत), ६. अश्मा (पत्थर), ७. अयः (लौह आदि धातु), ८. हिरण्य (सुवर्ण)।

(३) आदित्य गायत्री [२३] - आदित्य के ४ युग्म - मित्र-वरुण, भग-अंश, धाता-अर्यमा, सविता-विवस्वान् ।

(४) द्यौ गायत्री [२४] - द्यु लोक के तीन पाद-ज्योति, गौ, आयु-सभी अष्टाक्षर है ।

(५) सर्वात्मिका गायत्री [२५] - अग्नि के ८ रूप-पृथिवी, अप्, अग्नि, वायु, विद्युत्, सोम, रवि, आत्मा ।

(६) लोक गायत्री [२६] - ७ आरण्य पशु, ७ ग्राम्य पशु, ५ उद्भिज्ज, ५ जीव । चतुष्पाद गायत्री के अनुसार वाक्, भू, शरीर, हृदय चार पाद हैं ।

(७) संवत्सर - २४ पक्ष गायत्री के २४ अक्षर हैं ।[२७] पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा द्यु की ८-८ दिशायें भी गायत्री हैं ।

(८) लोक - मनुष्य से बड़े मण्डल - पृथ्वी, सौर, ब्रह्माण्ड, स्वयम्भू - सभी मनुष्य से क्रमशः$२^{२४}$ या कोटि गुणा बड़े हैं ।

सन्दर्भ

(१) वेदांगों के युग्म -

(क) शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां चितिः।
छन्दो विचितिरित्येष षडङ्गो वेद उच्यते ।।१।।
(ख) छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।।२।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ।।३।। (२,३ पाणिनीय शिक्षा ४१,४२)
(ग) शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचिति ज्योतिषमिति चाङ्गानि (कौटिल्य अर्थशास्त्र १/२/१) यहाँ सम्भवतः ज्योतिष चिति है ।
(घ) एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः, सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः, सेतिहासाः, सान्वाख्यानाः, सपुराणाः, सस्वराः, ससंस्काराः, सनिरुक्ताः, सानुशासनाः, सानुमार्जनाः, सवाकोवाक्याः। (गोपथ ब्राह्मण पूर्व, २/९)
(ङ) एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यत् ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो ऽथर्वाङ्गिरसः, इतिहासः, पुराणं, विद्याः, उपनिषदः, श्लोकाः, सूत्राणि, अनुव्याख्यानानि, व्याख्यानानि । अस्यैवैतानि निःश्वसितानि । (बृहदारण्यक उपनिषद्, २/४/१०)
(च) द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यत् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैव अपरा च ।।४।।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति ।।५।। (मुण्डकोपनिषद् १/१/४,५)
(२) वेदांगों का स्पष्ट रूप से ऊपर (१) के (घ) से (च) तक वेद रूप में उल्लेख है ।
(३) ऋषियों को मन्त्र द्रष्टा कहा गया है अर्थात् मन्त्र और शब्द नित्य हैं ऋषि सिर्फ दर्शन करते हैं । अंग्रेजी का (डिस्कवर) शब्द भी वैसा ही है । तथ्य पहले से हैं पर वे आवरण (कवर) में थे जिन्हें बाहर लाया गया । पूर्व मीमांसा के ६ सूत्रों (१/१/२७-३२) में वेद का अपौरुषेयत्व प्रमाणित किया गया है -
१. वेदांश्चैके संनिकर्षं पुरुषाख्याः । २. अनित्यदर्शनाच्च । ३. उक्तं तु शब्दपूर्वत्त्वम् । ४. आख्याः प्रवचनात् । ५. परं तु श्रुति सामान्य मात्रम् । ६. कृतो वा विनियोगः स्यात्, कर्मणः सम्बन्धनात् ।
जैमिनीय न्यायमालाविस्तर में भी -विध्यादि रूपो यः शब्दः सो नित्योऽथा विनश्वरः । अनित्यो वर्णरूपत्वाद् वर्णे जन्मोपलम्भनात् ।।
अबाधित प्रत्यभिज्ञाबलाद् वर्णस्य नित्यता । उच्चारण प्रयत्नेन व्यज्यतेऽसौ न जन्यते ।।

नित्या वाक् - वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य माता अमृतस्य नाभिः।
सा नो जुषाणोपयज्ञमागादवन्ती देवी सुहवा मे अस्तु ।(तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/८/५)
इयं या परमेष्ठिनी वाग् देवी ब्रह्मशंसिता।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः। (अथर्व सं. १९/९/३)
अन्य विचार है कि बार-बार लुप्त होने वाले वेद का ऋषि पुनः निर्माण करते है -
युगे युगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशस धेहि नव्यसीम् (ऋक् ६/८/५)
युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः । लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ।।
प्रति मन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते। ऋचो यजूंषि सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ।।
ऋषीणां तप्यतामुग्रं तपः परमदुश्चरम् । मन्त्राः प्रादुर्बभूबुर्हि पूर्व मन्वन्तरेष्विह ।।
(वायुपुराण, अध्याय ५९)
एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तु निबोधत । भृगुः काश्यः प्रचेताश्च दधीचोह्यात्मवानपि ।।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रास्तथा स्मृताः ।
ऋषीणांञ्च सुता ह्येते ऋषिपुत्राः श्रुतर्षयः ।। (मत्स्य पुराण, १२१ अध्याय)
यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिण अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण ।
तां देवी वाचं हविषा यजामहे सा नो दधातु सुकृतस्य लोके।
(तैत्तिरीय ब्रा. २/८/८/५)
नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यः ।
मामा ऋषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्राहुर्दैवी वाचम् (तैत्ति. आ. ४/१/१)
ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयत् गिरः ।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिः।(ऋक् सं. ९/११४/२)
मन्त्र के निर्माता या द्रष्टा दोनों रूपों में ऋषियो ने वेद का दर्शन किया और उसे समझाने के लिये वेदांगों का निर्माण किया - साक्षात् कृत धर्माण ऋषयो बभूवुः । तेऽवरेभ्यो ऽसाक्षात्कृत धर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदाङ्गानि च (यास्क निरुक्त, १/२०)
(४) छन्दो विचिति शब्द के प्रयोग १ (क), (ग) में है । इसके अतिरिक्त पाणिनीय गणपाठ ४/३७३, चान्द्र गणपाठ ३/१/४५ जैनेन्द्र गणपाठ ३/३/४७, जैनेन्द्र शाकटायन गणपाठ ३/१/१३६, सरस्वतीकण्ठाभरण ४/३/१८९, तथा गणरत्न महोदधि ५/३/४४ में है । निदान सूत्र की भूमिका में भी -

याः षट् पिङ्गल नागाद्यैः छन्दोविचितयः कृताः ।
अथ भगवान् छन्दोविचितिकारः पतञ्जलिः।।(निदान सूत्र, हृषीकेश व्याख्या की भूमिका)
(५) आवरण वाद - सृष्टि निर्माण के दस वैकल्पिक सिद्धान्तों का उल्लेख ऋग्वेद के नासदीय सूक्त (शौनक संहिता १०/१२८) में है । उसका प्रथम मन्त्र आवरीवः पद से आवरणवाद का उल्लेख कर रहा है -
नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरो यत् ।
किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहन गभीरम् ।।
इसमें अन्य वाद हैं - सदसद्वाद, रजोवाद, व्योमवाद, अपरवाद, अम्भोवाद ।
अन्य भी - अपश्यं गोपामनिपद्यमान मा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचिः स विषूचिर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः।
(ऋक् सं. १/१६४/३१, १०/१७७/३ वाज. यजु. ३७/१७ अथर्व ९/१०/११)
(६) वय, वयुन, वयोनाध का विस्तृत वर्णन पं. मधुसूदन ओझा की पुस्तक आवरणवाद में है, जो जोधपुर विश्वविद्यालय, राजस्थान से प्रकाशित है । उन्हीं की अन्य पुस्तकों दशवाद रहस्य, ब्रह्मविनय, छन्द समीक्षा आदि में भी है ।
वय = वी गति-व्याप्ति-प्रजन-कान्ति-असन-खादनेषु (पा. धातु २/४१)
वी + असुन् = वयस्
निघण्टु (२/७/७) में वयः अन्न नाम है । देवराज यज्वा के अनुसार कारक भेद से सभी प्रकार के अर्थ हैं - धन, अन्न, बाल्य आदि अवस्था, वर्ष, जीवन, खग, जाति और यौवन है -वये धनेऽन्ने बाल्यादौ वत्सरो जीविते खगे ।
जातौ च यौवने चैव सान्तं क्लीवमुदाहृतम् ।। (वाङ्मयार्णव ५०६१)
सायण ने अन्न-अश्व सम्बन्ध से इसका अर्थ रज्जु-रश्मि-वल्गा तथा बहुवचन (विः, वी, वयः) मानकर वेत्तारः, मरुत आदि अर्थ किये हैं । वयन क्रिया से बने वस्त्र की तरह अवयवों का परस्पर सम्बन्ध भी वय है । उस में भी प्राणशक्ति का प्रयोग होता है अतः वय, वयुन, वयोनाध सभी प्राण है -प्राणो वै वयः (ऐतरेय ब्रा. १/२८)
प्राणो वै देवाः वयोनाधाः । प्राणैर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम् । अथो छन्दांसि वै देवा वयोनाधाः। छन्दोभिर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम् (शतपथ ब्रा. ८/२/२/८) ।
वय से सम्बन्धित १९ प्रकार के छन्द हैं -
मूर्धावयः प्रजापतिछन्दः, क्षत्रवयो मयन्दं छन्दः.... (यजु. १४/९,१०) ।

पशवो वै वयांसि (शतपथ ९/३/३/७)।
पशवो वै वयस्या इष्टका (तैत्तिरीय सं. ५/३/१/३)
वयो वै वामदेव्य साम (जैमिनीय उप. ब्रा. १/१३९)
प्राणा वाव तेषां देवानां वामं-वननीयं-वसु आसीत् (जै. १/१४२)
तक्षन् पितृभ्यामृभवो युवद् वयः (ऋक् १/१११/१) ।
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद् वयः (ऋक् १/१११/२)
बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति (ऋक् १/१२५/२)
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्य देवेष्वा वयः (ऋक् १/१२७/८)
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः (ऋक् १/१३६/२)।
गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च (ऋक् १/१७८/२)
उपयाम गृहीतोऽसि इन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि (यजु ७/२२)
इन्धानस्त्वा शतं हि मा द्युमन्तं समिधीमहि ।
वयस्वन्तो वसस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम् ।। (यजु ३/१८)
वयांसि तद् व्याकरणं विचित्रम्, मनुर्मनीषा मनुजो निवासः।
(श्रीमद् भागवत २/१/३६)
वयुन- देवराज यज्वा मत -अज गति क्षेपणयोः(पाणि. धातु १/१३९)+ औणादिक उनन् प्रत्यय । यास्क मत- वी धातु से, वय की तरह । इसके अर्थ हैं -प्राण, धूम, अन्न वीर्य, पशु आदि। निघण्टु में प्रशस्य (३/८/१०) सायण भाष्य ऋक् (१/९२/६) में प्राणियों का ज्ञान, (१/१४४/५) में प्रज्ञान, अनुष्ठान विषय, (२/१९/८) में मार्ग तथा (३/५/६) में ज्ञातव्य पदार्थ अर्थ करते हैं।
वयोनाध = मर्यादा तथा वामम् = वय के साथ वयुन का प्रयोग -
का मर्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुषासः ।। (ऋक् ४/५/१३)
वयोनाध-या नाह- वयः + णह बन्धने (पाणिनि ४/५५) + अण् । ह का ध छान्दस प्रयोग है । जो वय को बान्धता है वह वयोनाध है । यजुर्वेद (१४/७) में ५ बार वयोनाध का प्रयोग है । वहाँ इसका अर्थ है सीमा भाव उत्पन्न करने वाले देव ।
(७) छन्द के वैदिक निर्वचन -
(क) यश्छन्दोभिश्छन्नः तस्मात् छन्दांसी व्याचक्षते (दैवत ब्रा. ३/१९)

छन्दांसि छन्दयन्तीति वा (दैवत ब्रा. ३/३०)
(ख) तद् यद् एनान् छन्दांसि मृत्योः पाप्मनोऽछादयँस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्, एनान् = देवान् ।(जैमिनीय ब्रा. उप. १/२८४)
(ग) तानि अस्मा (अस्मै = प्रजापतये) अच्छदयँ स्तानि यद् अस्मा अच्छदयन् तस्मात् छन्दांसि। (शतपथ ब्राह्मण, ८/५/२/१)
(घ) देवाः असुरान् हत्वा मृत्योः अबिभयुः, ते छन्दांसि अपश्यन्, तानि प्राविशन्, तेभ्यः यद् यद् अच्छदय तेन आत्मानम् अच्छादयन्त तत् छन्दसां छन्दस्त्वम्। (मैत्रायणी ब्राह्मण, ३/४/७)
(ङ) यत् छन्दोभिश्छन्नः तस्माच्छन्दांसि इत्याचक्षते। (ऐतरेय आरण्यक, २/१/६)
(च) ते छन्दोभिः आत्मानं छादयित्वा उपयान् तत् छन्दसां छन्दस्त्वम्। (तैत्तिरीय संहिता, ५/६/६/१)
(८) मधुसूदन ओझा के ब्रह्म-समन्वय के अव्यय अनुवाक् में -
यतो वस्तु व्यवच्छित्ति श्छन्द आयतनं च तत् ।
देश आयाम विस्तरौ दिक्कालौ छन्दसि स्फुटाः ।।३८३।।
अक्षरोपाधि वशतोऽवच्छिन्नं भवदव्ययम् । प्रत्यक्षं भवतिच्छन्दश्छन्दोभिश्छन्दनं च तत् ।
प्राणानाममृतानां तत् छन्दनं प्राणतोऽन्यतः ।।३८५ ।।
(९) सिर्फ भागवत पुराण में ही छन्दों के सभी रूप मिल जायेंगें -
१.छन्दांसि अनन्तस्य शिरः गृणन्ति (२/१/३१)
२.वाचां बह्ने मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः (२/७/११)
३.छन्दः सुपर्णैः ऋषयो विविक्ते (३/५/४०)
४.छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हि रोम (३/१३/३५)
५.तार्क्ष्येण स्तोत्र वाजिना (४/७/१९)
६. गरुडो भगवान् स्तोत्र-स्तोमश्छन्दोमयः (६/८/२९)
७. छन्दोमयं यदजयार्पित षोडशारं संसार चक्रम् (७/९/२१-२२)
८. यत्र हयाः छन्दोनामानः सप्त (८/३/३१)
९. खेभ्यमयं छन्दांसि ऋषयः (८/३/३९)
१०. छन्दांसि साक्षात् तत्र सप्त धातवः त्रयीमयात्मन् (८/७/२८)
११. छन्दोमयो देव ऋषिः पुराणः (८/७/३०)- पुराण = पुर में गतिशील प्राण
१२. यस्य छन्दोमयो ब्रह्मदेहः आवपनं विभो (१०/८०/४५)

१३. यद्यसौ छन्दसां लोकम् आरोक्ष्यन् ब्रह्मविष्टपम् (११/१७/३१)
वायुपुराण (अध्याय ५२), ब्रह्माण्ड पुराण (पूर्व, २२) विष्णु पुराण (२/८-१०) तथा मत्स्यपुराण आदि भी द्रष्टव्य हैं । वैदिक प्रयोग -
१. छन्दांसि वै ब्रजो गोस्थानः। (तैत्तिरीय ब्रा. ३/२/९/३)
२. अन्नं वाव पशवः तान्यस्मा (प्रजापतये) अच्छदयँस्तानि यदस्मा अच्छदयँ स्तस्माच्छन्दांसि। (शतपथ ८/५/२/१)
३. प्रजापतेर्वा एतान्यङ्गानि यच्छन्दांसि (ऐतरेय ब्रा. २/१८)
४. श्रियो छन्दो न स्मयते विभाती (ऋक्, १/९२/६)
५. छन्दांसि वा अस्य (अग्नेः) सप्त धाम प्रियाणि। (माध्यन्दिन सं. १७/७९ की व्याख्या शतपथ ८/२/३/४४ में)
६. अग्ने र्वै प्रिया तनू छन्दांसि (तैत्तिरीय सं. ५/२/१)
७. छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् (पुरुष सूक्त ७)
(१०) वाक् का परिमाण छन्द-यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः (ऋक् सर्वानुक्रमणी २/६) छन्दोऽक्षर संख्यावच्छेदकमुच्यते (अथर्ववेद की बृहत्सर्वानुक्रमणी १)।
अक्षरेण मिमते सप्तवाणीः (ऋक् १/१६४/२४)
यहाँ वाक् का अर्थ लिखित या उच्चरित शब्द, शब्द द्वारा गमन किया गया आकाश भी है । अतः आकाश का गुण शब्द कहा जाता है । ध्वनि, प्रकाश या अन्य तरंगों का जहाँ तक विस्तार है वह आकाश क्षेत्र भी वाक् परिमाण या छन्द है ।
(११) अग्नि की ७ जिह्वा (मृण्डकोपनिषद्)
काली कराली च मनोजवा च, सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी, लेलायमाना इति सप्तजिह्वाः । (१/२/४)।
सप्तप्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्, सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः ।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा, गुहाशया निहिताः सप्त सप्त (२/१/८)
(१२) विस्तार के लिये - पिंगल का छन्दशास्त्र (द्वितीय अध्याय) चौखम्बा, दिल्ली।
वैदिक छन्दो मीमांसा- पं. युधिष्ठिर मीमांसक - रामलालकपूर ट्रस्ट ।
(१३)छन्दः स्वरूप - मा छन्दः तत् पृथिवी, अग्निर्देवता, तेन छन्दसा तेन ब्रह्मणा तया देवत्या अंगिरस्वद् ध्रुवासीद् । प्रमाछन्दः, तदन्तरिक्षम्, वायुर्देवता । प्रतिमा छन्दः, तद्द्यौः, सूर्यो देवता । अस्रीवीश्छन्दः, तद्हिरण्यम्, इन्द्रो देवता । जगती छन्दः, तद् गौः, प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः, तदायुः, मित्रो देवता । उष्णिक् छन्दः, तच्चक्षुः,

पूषा देवता । विराट् छन्दः, तदश्वः, वरुणः देवता । बृहती छन्दः, तत्कृषिः पर्जन्यो देवता । पंक्तिश्छन्दः, तत्पुरुषः परमेष्ठी देवता (मैत्रायणी सं. २/१४/९३-९७) काठक सं ३९/३९-४०)

(१४) जैन ज्योतिष के माप सज्जन सिंह लिश्क की पुस्तक जैन एस्ट्रोनोमी (अरिहन्त प्रकाशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली से उपलब्ध) या लक्ष्मीचन्द जैन की ताओ औफ जैन साइन्सेज में है । पुराणों में भुवः, महः तपः इन तीन अन्तरिक्ष लोकों की माप प्रमाण योजन में है ।

(१५) बृहती छन्द रूप-तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री (ऐतरेय ब्रा. १/५, ताण्ड्य महा ब्रा. १६/१४/५, १६,१६/६) पांक्तो वै यज्ञः (तैत्तिरीय सं. ५/२/३/६, मैत्रायणी सं. १/४/९) आयुर्वा उष्णिक् (ऐत ब्रा. १/५) श्रीवै यशश्छन्दसां बृहती (ताण्ड्य, ऐतरेय ब्रा. १/५) अन्नं वै विराट्, यस्यैवेह भूयिष्ठ-मन्नं भवति । ओजो वा इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् (ऐत. ब्रा. १/५) गायत्रो हि ब्राह्मणः (तैत्ति. सं. ५/१/४/५) त्रैष्टुभो राजन्यः (तै.सं. ५/१/४/५ जैमिनीय ब्रा. २/१/२०) इन्द्रियं वीर्यं त्रिष्टुप् (जैमिनीय ब्राह्मण उपनिषद्, १/१३२, ३/२०६) जागताः वै पशवः (तैत्तिरीय संहिता, २/५/१०/२, ऐतरेय ब्राह्मण, १/५) वीर्यं गायत्री (जैमिनीय ब्रा.१/३०९, ३/२०६) ब्रह्म गायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् (शतपथ ब्रा. १/३/५/७) गायत्रं वा अग्नेश्छन्दः(शतपथ ब्राह्मण, १/३/५/४) गायत्रीमेवाग्नये वसुभ्यः, त्रिष्टुभमिन्द्राय रुद्रेभ्यः, जगतीं विश्वेभ्यो देवेभ्य आदित्येभ्यः (ऐतरेय आरण्यक, ३/९/१-सायण क्रम) गायत्री वै ब्राह्मणः त्रैष्टुभो राजन्यः जागतो वै वैश्यः (जै. ब्रा. २/१०२)

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सम्बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पते र्बृहती वाचमावत् (ऋक् १०/१३०/४)
विराण् मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भगो अह्नः ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्त ऋषयो मनुष्याः। (ऋक् १०/१३०/५)

उष्णिक्, अनुष्टुप् को गायत्री लोक सौर मण्डल में ही गिनने पर तीन छन्दों से विश्व की माप है - गायत्री, त्रिष्टुप् जगती-

कतमे एते देवा इति, छन्दांसीति ब्रूयाद् गायत्रीं त्रिष्टुभं जगतीमिति ।(तैत्तिरीय सं. २/६/९/३,४)

त्रीणि वै छन्दांसि यज्ञं वहन्ति गायत्री त्रिष्टुप् जगती (जैमि. ब्रा. १/१२०)

गायत्रं छन्दोऽनुप्रजायस्व, त्रैष्टुभं जागतम् इत्येतावन्ति वै छन्दांसि (काठक २६/७)
वाक् सुपर्णी छन्दांसि सौपर्णानि गायत्री त्रिष्टुप् जगती (मैत्रायणी सं. ३/७/३)

(१६) अतिच्छन्द - अतिच्छन्द समुपदधाति, अतिच्छन्दा वै सर्वाणि छन्दांसि, सर्वेभिरेवैनं छन्दोभिश्चिनुते । वर्ष्म उ वा एषां छन्दसां यदतिच्छन्द समुपदधाति वर्ष्मैवैनं समानानां करोति (तैत्तिरीय सं.५/३/८/९)

अतिच्छन्दो वै छन्दसामायतनम् (गोपथ ब्रा.पू. ५/४)
अतिवा एषा अन्यानि छन्दांसि यदतिच्छन्दाः (ताण्ड्य महा ब्रा. ५/२/११)
एषा वै सर्वाणि छन्दांसि यदतिच्छन्दाः (शतपथ ३/३/२/११)
शरीराण्यतिच्छन्दा (जै.ब्रा. २/५८)
छन्दसां वै यो रसोऽत्यक्षरत् सोऽतिच्छन्द समः यत्यक्षरत् ।
तदतिच्छन्दसोऽति च्छन्दस्त्वम् (ऐतरेय ब्रा. ४/३)

(१७) अनेक प्रकार के कृति छन्दों का वर्णन महर्षि विश्वदेव ने माध्यन्दिन सं. (१४/९, १०, १२) में किया है । उनमें समुद्र (२६ × ४ अक्षर) छन्द की व्याख्या है - अनन्तानि वा अहोरात्राणि अनन्ताः सिकताः एवमुहास्यैता अहोरात्रैः सम्पन्ना अन्यूना अनतिरिक्ता उपहिता भवन्ति । अथ कस्मात् समुद्रियं छन्दः इति ? अनन्तो वै समुद्रः अनन्ता हि सिकताः, तस्मात् समुद्रियं छन्दः।(शतपथ ब्राह्मण, ७/२/३/३९)

(१८) तीन पदार्थ - अग्निर्वै गायत्री (शतपथ ब्राह्मण, ३/४/१/१९, ६/६/२/७)। इन्द्रस्त्रिष्टुप् (शतपथ, ६/६/२/७),
आदित्या जगती समभरन् (जैमिनीय ब्राह्मण उपनिषद्, १/१८/६)।

(१९) तीन वर्ण- गायत्रो वै ब्राह्मणः, त्रैष्टुभो वै राजन्यः, जागतो वै वैश्यः (ऐतरेय ब्रा. १/२८)

(२०) तीन पदार्थ रूप - त्रीणि छन्दांसि कवयो वियेतिरे, पुरुरूपं दर्शनं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन अर्पितानि (अथर्व सं. १८/१/१७)

(२१) वैश्वानर - अयमग्निः वैश्वानरः योऽयम् अन्तः पुरुषे .. (शतपथ ब्राह्मण, १४/८/१०/१) स च सः वैश्वानरः, इमे स लोकाः, इयमेव पृथिवी विश्वम्, अग्निः नरः अन्तरिक्षमेव विश्वं वायु नरः, द्यौरेव विश्वम् आदित्यः नरः (शतपथ, ९/३/१/३)
प्रादेशमात्रं हीम आत्मनोऽभि प्राणाः (कौषीतकि ब्रा. २/२)

(२२) पार्थिव गायत्री-गायत्री वा इयं पृथिवी (शतपथ, ४/३/४/९)

तद् यद् असृज्यत अक्षरत् तत्, यद् अक्षरत् तस्मादक्षरम्, यदष्टकृत्वः अक्षरत् सैव अष्टाक्षरा गायत्री अभवत् (१७)

(२३) चार आदित्य युग्म - अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वं परि देवा उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्ड मास्यत् (ऋक् १०/२/८)ताननुक्रमिष्यामो मित्रश्च वरुणश्च, धाताचार्यमा च, अंशश्च भगश्च, विवस्वानादित्यश्च (तैत्तिरीय आरण्यक १/१३/३)

(२४) सूर्य के तीन मनोता - ज्योतिर्गौरायुरिति त्र्यहो भवति, इयं वाव ज्योति, अन्तरिक्षं गौः, असौ आयुः (तैत्तिरीय सं. ७/३/६/३)

(२५) अष्टमूर्त्ति शिव - अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्याश्च, द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः।(शतपथ ब्राह्मण ११/६/३/६)

(२६) महाभारत भीष्मपर्व अध्याय ४ के अनुसार लोक गायत्री -

द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च। चराणां त्रिविधा योनिः अण्ड स्वेद जरायुजाः।।१०।। जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ।।११।। नानारूप धरा राजँस्तेषां भेदाश्चतुर्दश । वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ।।१२।। उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्ताः तेषां पञ्चैव जातयः ।।१४।।

तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चक। चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोक सम्मता ।।१५।।

(२७) संवत्सरगायत्री-चतुर्विंशति गायत्र्या अक्षराणि, चतुर्विंशतिः संवत्सर-स्यार्धमासाः..(काठक सं. १०/७)

****

अध्याय २

गायत्री मन्त्र के १५ अर्थ

१. तन्त्रानुसार मन्त्र के १५ अर्थ-- भास्करराय भारती ने वरिवस्या-रहस्यम् में लिखा है कि मन्त्रों के १५ प्रकार के अर्थ होते हैं -

अथातः पूर्ण गायत्र्याः प्रतिपाद्योऽर्थ आदिमः। भावार्थः सम्प्रदायार्थो निगर्भार्थस्तुरी यकः।।५७।।
कौलिकार्थो रहस्यार्थो महातत्त्वार्थ ए व च। नामार्थः शब्दरूपार्थश्चार्थो नामैकदेशगः।।५८।।
शाक्तार्थः सामरस्यार्थः समस्त सगुणार्थकौ। महावाक्यार्थ इत्यर्थाः पञ्चदश्याः स्वसम्मिताः।।५९।।

१. प्रतिपाद्य अर्थ-सामान्य शब्द एवं वाक्यों के अन्वय अनुसार अर्थ।

२. भावार्थ-अक्षरार्थो हि भावार्थः केवलः परमेश्वरि (योगिनी हृदय,२५)

३. सम्प्रदायार्थ-गुरु-परम्परा से प्राप्त-तथा मन्त्राः समस्ताश्च विद्याया मन्त्र संस्थिताः।
गुरु क्रमेण सम्प्राप्तः सम्प्रदायार्थ ईरितः।।४७।।(योगिनी हृदय)

४. निगर्भार्थ-गुरु तथा परमशिव में अभेद-दर्शन तथा उसके साथ अपना अभेद देखना ।

५. कौलिकार्थ-माता, पिता, चक्र, स्वगुरु, एवं स्वयं में अभेद-दर्शन।

६. रहस्यार्थ-कुण्डलिनी ही शुद्ध विद्या तथा जगन्माता है, उससे अपना अभेद देखना।

७. महातत्त्वार्थ-परम-ब्रह्म से अपना अभेद दर्शन।

८,९. नामार्थ या शब्दरूपार्थ- वर्ण तथा उनसे बने शब्दों के अर्थ (नाम-आख्यात-उपसर्ग-निपात)

१०. नामैकदेशार्थ-मन्त्र के अक्षरों द्वारा निर्देशित देवी नाम।

११. शाक्तार्थ-प्रत्येक अक्षर में शक्ति है-उसी से मन्त्र का प्रभाव होता है।

१२. सामरस्यार्थ-तीन कूटों (वाग्भव, काम, शक्ति) में ब्रह्म में शिव-शक्ति का सामरस्य देखना।

१३. समस्तार्थ- पदों एवं गुणों का समास, उनसे पुरुषार्थों का साधन।

१४. सगुणार्थ- समस्त गुणों के गण का कथन।

१५. महावाक्यार्थ-तुरीय कूट में ब्रह्म और जीव का तादात्म्य देखना।

२. गायत्री तथा पञ्चदशी मन्त्र में समतुल्यता-

पञ्चदशी मन्त्र-क ए ई ल ह्रीं, ह स क ह ल ह्रीं, स क ल ह्रीं।

गा यत्री मन्त्र-ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

वाग्भव-कूट (१) गायत्री का तत्= पञ्चदशी का क = ब्रह्म। क = कामेश्वर शिव (ब्रह्म, परमात्मा)

(२) गायत्री का -सवितुर्व रेण्य ं = प्रसवित्री, जगन्माता। पञ्चदशी का-ए = देवी कामेश्वरी (सरस्वती)(३) गायत्री का-भर्गो देवस्य धी = पञ्चदशी का ई = सर्वा न्तर्यामी, सर्वपोषक।

(४) गायत्री का महि = पञ्चदशी का ल = पृथ्वी

(५) गायत्री का चौथा चरण = धियो यो न: प्रचोदयात् = पञ्चदशी का ह्लीं बीज।

कामराज कूट- गायत्री के अक्षर	पञ्चदशी के अक्षर
१. तत् , सवितुः , वरेण्यं	ह, स, क
२. भर्गो देवस्य धी	ह (चतुर्थ वर्ण)

इसी प्रकार अन्य खण्डों का सामञ्जस्य है।

३. वेद में १५ अर्थ-इसके अतिरिक्त वेद में भी १५ प्रकार के अर्थो का उल्लेख है-

सह स्र्धा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावा पृथिवी तावदित् तत् । (ऋक्.१०/११४/८)

सामान्यत: वेद के ३ प्रकार के अर्थ मा ने जाते हैं-आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक(गीता ८/१-३)। यहां विश्व के ५ पर्वों में प्रत्येक के ३-३ अर्थ होने से कुल १५ अर्थ होगें - यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्याय: परमन्यदस्ति।

यस्तद्वेद स वेद सर्वं सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति।।(छान्दोग्य उप.२/२१/४)

अर्थात् ५ स्थानों में विभक्त जो ३-३ तत्त्व है, उनके अतिरिक्त महान् और कोई वस्तु नहीं है। जो व्यक्ति इनका स्वरूप समझ लेता है, उस विद्वान् के लिए सम्पूर्ण दिशाएं (चारो ओर से) बलि (भोग्य सम्पत्ति) समर्पण करती रहती हैं।

यहां ५ स्थान हैं-

१. स्वयम्भू-सम्पूर्ण जगत्,

२. परमेष्ठी-उस ब्रह्म के १०० अरब कणों में एक अण्ड (ब्रह्माण्ड)-आकाश-गङ्गा,

३. सौर-मण्डल-ब्रह्माण्ड के १०० अरब कणों में एक सूर्य का प्रभाव-क्षेत्र,

४. चान्द्र-मण्डल-चन्द्र कक्षा का गोला, जो सौर मण्डल का सम-शीतोष्ण क्षेत्र है,

५. भू-मण्डल-पृथिवी।

इनके ३ तत्त्व ३ प्रकार से वर्णित हैं-

१. तीन सहस्र लोक-वेद-वाक् हैं, जो इन्द्र (वि किरण)-विष्णु (वेष्टन = बान्धना) की स्पर्द्धा से हो रहा है-

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे, न परा जिग्ये कतरश्च नैनो:।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथाम्। (ऋक् ६/६९/८)

किं तत् सहस्रमिति-इमे लोका:, इमे वेदा:, अथो वागिति ब्रूयात् । (ऐतरेय आ.६/१५)

इन्द्र का विस्तार वाक्-साहस्री, विष्णु द्वारा वेष्टित क्षेत्र लोक-साहस्री, तथा इन दोनों का केन्द्र हृदय ब्रह्मा द्वारा वेद-साहस्री हुयी है।

२. आधार-रूप आकाश खं-ब्रह्म है। जिस पदार्थ की अहुति से सृष्टि हो रही है , वह अन्न रं-ब्रह्म है। उसका उपभोग कर सृष्टि करने वाला कं ब्रह्म है। तीनों की समष्टि से यज्ञ हो रहा है, जो शं-ब्रह्म है।

३. इन सबकी प्रतिष्ठा हृदय में स्थित मन है-हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मन: (वाज.यजु.३४/६)। यही उक्थ या स्रोत है। इस मनोमय हृदय के तत्त्व मनोता कहे जाते हैं। प्रत्येक मण्डल के ३-३ मनोता ३-३ वस्तुओं की प्रतिष्ठा हैं-

मण्डल	मनोता	उससे प्रतिष्ठित तत्त्व
स्वयम्भू-	१. वेद (प्रत्येक कण द्वारा दूसरे का अनुभव)	ब्रह्म (सम्पूर्ण विश्व)
	२. सूत्र (कणों का परस्पर सम्बन्ध)	विष्णु (क्रिया)
	३. नियति (निर्मित पदार्थों का विस्तार)	इन्द्र (विकीर्ण पदार्थ)
परमेष्ठी -	१. भृगु (आकर्षण)	सोम (विरल पदार्थ)
	२. अङ्गिरा (प्रसारण)	अग्नि (सघन पदार्थ)
	३. अत्रि (एक स्थान पर)	आवरण (छन्द या सीमित पिण्ड)
सौर-	१. ज्योति (प्रकाश रूप ऊर्जा का प्रसार)	देव (धाम या क्षेत्रों का प्राण)
	२. गौ (किरण)	भूत (चर-अचर प्राणी)
	३. आयु (पिण्ड की क्रिया क्षमता)	आत्मा (एक पिण्ड)
चन्द्र-	१. रेत-(पदार्थ-कण)	शुक्र(बीज)
	२. श्रद्धा (कण का अन्य से बन्धन)	पितृ (उपादान, निर्माण-सामग्री)
	३. यश (प्रभाव-क्षेत्र)	श्री (तेज)
पृथिवी-	१. वाक्(विस्तार)	असंज्ञ (सुप्त चेतना-मिट्टी आदि)
	२. गौ (इन्द्रिय)	अन्त:संज्ञ (वनस्पति)
	३. द्यौ (आकाश-बाह्य सम्पर्क)	ससंज्ञ (मनुष्य,पशु-पक्षी-जलचर)

४. छन्द द्वारा अर्थ-वाक् का परिमाण छन्द है-
यदक्षर परिमाणं तच्छन्दः (ऋक् सर्वानुक्रमणी , २/६)
छन्दोऽक्षर संख्याऽवच्छेदकमुच्यते (अथर्ववेद की बृहत् सर्वानुक्रमणी , १)
अक्षरेण मिमते सप्तवाणी (ऋक् १/१६४/२४)

यहां वाक् का अर्थ लिखित या उच्चरित शब्द, शब्द द्वारा गमन किया गया आकाश भी है। आकाश का गुण शब्द कहा जाता है। ध्वनि, प्रकाश या अन्य तरङ्गों का जहां तक विस्तार है, वह आकाश क्षेत्र भी वाक् परिमाण या छन्द है। इसके मूल धातु हैं-
(१) चदि (चन्द) आह्लादने, दीप्तौ च(पाणिनि धातु१/५६)-प्रसन्नता, प्रकाश अर्थ में।
(२) छद संवरणे(१०/२४८)-आच्छादित करना।
(३) छद अपवारणे (१०/२६० स्वरित,१०/३६२ अदन्त)-हटाना, छिपाना।
(४) छदि (छन्द) संवरणे (१०/४६)

इन धातुओं के अनुसार छन्द के ११ प्रकार के अर्थ हैं (पं. मधुसूदन ओझा की छन्दः समीक्षा)-१. उपसंव्यान (भीतरी आवरण या वस्त्र), २. पर्याधान (बाहरी आवरण या वस्त्र), ३. चर्चितक(बाहरी लेप, विचारण), ४. अवरोध (बाधा), ५. व्याप्ति (विस्तार या माप), ६. दूषितकरण, ७. स्वरूपकरण, ८. ऊर्ज्जन (गति या शक्ति देना), ९. विविता (क्षेत्र का कुछ भाग अलग करना), १०. गोपन (छिपाना), ११. अन्तर्धान (लोप, अदर्शन)।

इन अर्थों के प्रयोग वेद तथा पुराणों में भरे पड़े हैं, जिनके विस्तृत उदाहरण उपर्युक्त पुस्तक में हैं।

छन्द वेदाङ्ग होने के कारण इसके वेदार्थ में दो प्रकार के प्रयोग हैं-

(१) यह गायन और काव्य में उपयोगी होने के अतिरिक्त वाक्य-खण्डों का भी निर्देश करता है। वाक्य एक छन्द होता है, पूर्ण अर्थ के वाक्यांश छन्द के पद हैं। बड़े छन्दों में एक पद में भी एक या दो यति देकर विभक्त किया जाता है। छन्द, पद, यति के बाद ही शब्दों का अन्वय कर उनका अर्थ निर्देश होता है। इनका मूल स्रोत पिङ्गल का

छन्द-सूत्र है, जिसकी हलायुध टीका में वैदिक और लौकिक छन्दों के उदाहरण दिये गये हैं।

(२) देश और काल की सीमा का निर्देश तथा पिण्डों का आकार छन्दों से निर्दिष्ट होता है। उनका परिवर्तन काल-सापेक्ष है, अतः वह भी छन्दों पर आधारित है। वस्तु के अवयवों की संख्या, माप संख्या आदि की माप भी छन्दों से होती है।

वेद में २६ प्रकार के छन्द हैं, जिससे रोमन लिपि में २६ अक्षर हैं। प्रथम ५ छन्द मा-छन्द हैं-इनका प्रयोग माप की मूल इकाइयों में होता है-आधुनिक भौतिक विज्ञान में ५ मूल इकाइयों की आवश्यकता होती है। इनके ४ चरणों में प्रत्येक में १-५ अक्षर होते हैं। इसके बाद ७-७ छन्दों के ३ सप्तक हैं, जिनकी पाद (चतुर्थांश) की अक्षर-संख्या ६ से २६ है-

छन्द/पादाक्षर संख्या	१	२	३	४	५		
प्राग्-गायत्री-पञ्चक (मा)	मा	प्रमा	प्रतिमा	उपमा	समा		
गायत्री सप्तक-	६	७	८	९	१०	११	१२
(बृहती-छन्द)	गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
द्वितीय सप्तक	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
(अति-छन्द)	अतिजगती	शक्वरी	अतिशक्वरी	अष्टि	अत्यष्टि	धृति	अतिधृति
तृतीय सप्तक	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६
(कृति-छन्द)	कृति	प्रकृति	आकृति	विकृति	संकृति	अभिकृति	उत्कृति

छन्द की अक्षर-संख्या में ४-४ का अन्तर होने के कारण २ अक्षर कम से लेकर २ अक्षर अधिक तक वही छन्द होता है
कम-१अक्षर = विराट्, २ अक्षर = निचृद्।
अधिक-१ अक्षर = भूरिक्, २ अक्षर = स्वराट्।

५. गायत्री का छन्दार्थ-जगत् के विराट् स्तरों की माप गायत्री-सप्तक द्वारा होती है, अतः इन्हें बृहती-समूह कहा गया है। इस के लिये पृथ्वी का आकार ही माप-दण्ड है-

मा छन्दः, तत् पृथिवी , अग्नि र्देवता (मैत्रायणी सं. २/१४/९, काठक सं ३९/३९) पृथ्वी के भीतर ३ स्तर हैं, केन्द्र से पृथ्वी की सतह तक ३ अहर्गण हैं-
पृथिव्यामिमे लोकाः (पृथिवी, द्यौ, अन्तरिक्ष) प्रतिष्ठिताः (जैमिनीय ब्रा. उप. १/१०/२)
तस्या एतत् परिमितं रूपं यदन्तर्वेदि (भूपिण्डः) अथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदिः (महापृथिवी)- ऐतरेय ब्रा.(८/५)
४ अहर्गण इसका २ गुणा, ५ अहर्गण ४ गुणा, तथा इसी प्रकार अगले अहर्गण क्रमशः २-२ गुणा बड़े हैं। गायत्री छन्द (२४ अहर्गण) अर्थात् पृथ्वी को २१ बार २-गुणा करने से क्रतु (यज्ञ) का क्षेत्र होता है-सूर्य तुलना में ६० गुणा दूर। यह सूर्य-सिद्धान्त (१२/८०) के अनुसार सूर्य का नक्षत्र-मण्डल है। इसके बाद अर्थात् क्रतु के पुत्र ६०,००० बालखिल्य हैं, जिनका आकार अङ्गुष्ठ (९६ अङ्गुल की पृथ्वी का ९६ भाग या १३५ कि.मी. व्यास का) के बराबर है-
क्रतोश्च सन्ततिर्भार्या बालखिल्यानसूयत। षष्टि पुत्र सहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम्।
अङ्गुष्ठ पर्व मात्राणां ज्वलद्भास्कर तेजसाम् (विष्णु पु. १ /१०/१०)
तथा वालखिल्य ऋषयोऽङ्गुष्ठ पर्व मात्राः षष्टि सहस्राणि पुरतः सूर्य सूक्त वाकाय नियुक्ताः। (भागवत पु. ५/२१/१७)
उष्णिक् (निचृद् में २७ अक्षर) अर्थात् पृथ्वी के आकार का २४ बार २ गुणा या १ कोटि गुणा उष्ण-क्षेत्र है, जिसे मैत्रेय-मण्डल कहा गया है- यह सूर्य व्यास का १ लाख गुणा है (विष्णु पु. २/८/२-६ आदि)। उसके बाद ३३ अहर्गण (पृथ्वी सतह के बाहर ३०, भीतर में ३) तक सौर-मण्डल का विस्तार है, जहां प्रति धाम की माप अहः में है-
त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते। प्रतिवस्तोरहद्युभिः। (ऋक् १०/१९/३)
इनके प्राण ३३ देवता हैं (३ पृथ्वी के भीतर, ३० बाहर) -
इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च। मनो र्देवा यज्ञियासः। (ऋक् ८/३०/२)

अतः सौर-मण्डल भूरिक् (१ अक्षर अधिक) अनुष्टुप् छन्द (३३) है। उसके बाद प्रजापति का क्षेत्र बृहती छन्द है। पंक्ति छन्द इससे बड़ा है, अतः इसका पुरुष है। महर्लोक की माप त्रिष्टुप् छन्द (४४ अक्षर) है- माहेश्वर सूत्र में ४३ अक्षर होने के कारण ४३ अक्षर का महर्लोक है। इसके बाद ४८ अक्षर का जगती छन्द है, ४९ मरुत् होने के कारण भूरिक् जगती ब्रह्माण्ड की माप है, अतः इसे जगती कहा जाता है, और इसे गौ या पशु कहा गया है । उदाहरण-
तेजो वै ब्रह्मवर्चसं गायत्री (ऐतरेय ब्राह्मण १/५, ताण्ड्य महा ब्रा.१६/१४/५, १६/१६/६)
आयु (आयतन)-र्वा उष्णिक्। (ऐत.ब्रा.१/५)।
उष्णिक् छन्दः, तच्चक्षुः (मैत्रा. सं. २/१४/९६, काठक सं. ३९/४०)
अनुष्टुप् छन्दः, तदायुः, मित्रो देवता। (मैत्रा. सं.२/१४/९५, काठक सं. ३९/३९)
श्रीर्वै यशश्छन्दसां बृहती । (ताण्ड्य महा ब्रा.१६/१४/५, ऐत. ब्रा. १/५)
पंक्तिश्छन्दः, तत्पुरुषः। (मैत्रा. सं. २/१४/९७, काठक सं ३९/४०)
विराट् (=त्रिष्टुप्) छन्दः, तदश्वः, वरुण देवता । (मैत्रा. सं. २/१४/९६, काठक सं. ३९/४०)
त्रैष्टुभो राजन्यः । (तैत्तिरीय सं. ५/१/४/५, जैमिनीय ब्रा. उ. २/१/१०),
ओजो वा इन्द्रिय वीर्यं त्रिष्टुप् । (ऐत.ब्रा. १/५)।
जगती छन्दः, तद् गौः, प्रजापतिर्देवता । (मैत्रा. सं. २/१४/९५, काठक सं. ३९/३९)
जागता वै पशवः । (तैत्ति. सं. २/५/१०/२, ऐत. ब्रा. १/५)
मुख्यतः गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती छन्दों से सौर, महर्लोक, ब्रह्मण्ड की माप है-
कतमे वै देवा इति, छन्दांसीति ब्रूयाद् गायत्री त्रिष्टुभं जगतीमिति । (तैत्तिरीय संहिता २/६/९/३,४)
गायत्रं छन्दोऽनुप्रजायस्व, त्रैष्टुभं जागतम्, इत्येतावन्ति वै छन्दांसि। (काठक सं. २६/७)
वाक् सुपर्णी छन्दांसि सौपर्णानि गायत्री त्रिष्टुप्, जगती । (मैत्रा.सं. ३/७/३)

ऋक् सं (१०/१३०/४,५) में इनका सारांश है-
अग्नेर्गायत्र भवत् सयुग्वोष्णिहया सविता सम्बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत्।
विराण् मित्रा वरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भगो अह्नः।
विश्वान् देवाञ्जागत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः।

इन ३ में भी सबसे महत्त्वपूर्ण छन्द गायत्री है-गायत्री छन्दसामहम् (गीता १०/३५) इसी से सभी लोकों की माप होती है-
गायत्र्या वै देवा इमान् लोकान् व्याप्नुवन्। (ताण्ड्य महा ब्रा. १६/१४/४)
यद्गायत्री श्येनो भूत्वा दिवः सोममाहरत्ते न सा श्येनः। (शतपथ ब्रा. ३/४/१/१२)
तृतीयस्यामितो दिवि सोम आसीत्। तं गायत्र्याहरत् ।(तैत्तिरीय ब्रा. १/१/३/१०, ३/२/१/१)
या द्यौः साऽनुमतिः सा एव गायत्री । (ऐतरेय ब्राह्मण ३/४८)
यातयामान्यन्यानि छन्दांस्यातयामा गायत्री । (ताण्ड्य १३/१०/१)

मनुष्य का आकार २४ बार २ गुणा अर्थात् कोटि गुणा करने से पृथ्वी का आकार होता है, उसे पुनः गायत्री या कोटि गुणा करने से सावित्री (सौर का मैत्रेय भाग), तथा पुनः कोटि गुणा करने से सरस्वती (आकाश-गङ्गा का क्षेत्र) होता है। अतः आपस्तम्ब गृह्य सूत्र परिशिष्ट में सवनों का यही क्रम है-
बालां बालादित्य मण्डलमध्यस्थाम्, ब्रह्म दैवत्यां गायत्रीं नामदेवतां ध्यायामि।
मध्यन्दिने तां युवादित्य मण्डलमध्यस्थाम्, रुद्र दैवत्यां सावित्रीं नामदेवतां ध्यायामि।
अथ सायं तां वृद्धां वृद्धादित्य मण्डल मध्यस्थाम्, विष्णुदैवत्यां सरस्वतीं नामदेवतां ध्यायामि।

६. त्रिपाद गायत्री के अर्थ -वाक् को अष्ट पदी कहा गया है-इस रूप में अनुष्टुप् छन्द के समान इसके प्रत्येक चरण में ८ अक्षर होंगे। प्रकृति के ३ गुणों (सत्त्व, रज, तम) का मेल २ × २ × २ = ८ प्रकार का होगा, प्रत्येक के २ प्रकार हैं-उन्हें रखें या छोड़ें। पृथिव्यसि जन्मना वशा, साग्निं गर्भमधत्था। (मैत्रायणी सं.२/१३/१५)

अयं वै लोको गायत्री । (ऐतरेय आ.१/३/४)। इयं वै गायत्री (मैत्रायणी सं. १/५)। गायत्री वा इयं पृथिवी । (शतपथ ब्रा. ४/३/४/९)। आठ पदार्थों के निर्माण का उपसंहार है-तद् यद् असृज्यत अक्षरत् तत् , यद् अक्षरत् तस्मादक्षरम्, यद् अष्टकृत्वः अक्षरत्, सैव अष्टाक्षरा गायत्री अभवत् । (शतपथ ब्रा. ६/१/३/१-६)
वाक्, गौ, द्यौ-पृथ्वी के ये ३ मनोता भी ८-८ अक्षर के हैं।

(३) आदित्य गायत्री-आदित्य के ४ युग्म हैं-१. मित्र-वरुण, २. भग-अंश, ३. धाता-अर्यमा, ४. सविता-विवस्वान्। अष्टौ पुत्रा सो अदिते र्ये जातास्तन्वस्परि। देवां उप प्रैत् सप्तभिः परा मार्ताण्ड मास्यात् (ऋक्. १०/७२/८)
इसकी व्याख्या-एताभिर्वा आदित्या द्वन्द्वम् आर्ध्नवन्-मित्रश्च वरुणश्च, धाता चार्यमा च, अंशश्च भगश्च, इन्द्रश्च विवस्वांश्च, एता सामेव देवतानाम् ऋद्धिम् ऋध्नुवन्ति ये एता उपयन्ति। (ताण्ड्य महा ब्रा. २४/१२/४)

(४) द्यौ गायत्री- द्युलोक के भी ज्योति, गौ, आयु-३ पाद हैं -सभी अष्टाक्षर हैं-
ज्योतिर्गोरायुरिति ज्ञाताः स्तोमा भवन्ति। (तैत्तिरीय सं.७/२/४/४)

(५) सर्वात्मिका गायत्री -अग्नि के ८ रूप सर्वत्र व्याप्त हैं-पृथिवी, अप्, अग्नि, वायु, विद्युत्, सोम, रवि, आत्मा-
अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्याश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसवः। (शतपथ ब्रा. ११/६/३/६)

(६) लोक गायत्री-गायत्री के २४ अक्षरों के अनुसार २४ रूपों का विभाजन ७+७ आरण्य तथा ग्राम्य पशु, ५ उद्भिज्ज तथा ५ जीवों के रूप में है-
७ आरण्य पशु-व्याघ्र, सिंह, महिष, वराह, ऋक्ष, मतङ्ग (गज), कपि।
७ ग्राम्य पशु-गौ, अवि (मेष, भेड़), अज, अश्वतर (खच्चर), अश्व, रासभ (गर्दभ), मनुष्य। ५ उद्भिज्ज-वृक्ष, गुल्म (झाड़, झाड़ी), लता, प्रतान, तृण।
५ जीव-वाङ्मय, पार्थिव, तैजस (आग्नेय), आप्य (जलीय), वायव्य।
अथवा-५ उदिभद्+५ धातु (महाभूत) +१४ पाद रहित जीव।
अथवा- वाक्, भू, शरीर, हृदय-प्रत्येक के ६-६ अक्षर।

द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च। चराणां त्रिविधा योनिः अण्ड-स्वेद-जरायुजाः।। जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये। नाना रूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश।। वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः। उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्ताः तेषां पञ्चैव जातयः।। तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु। चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोक सम्मताः।।(महाभारत, भीष्म ४/१०-१५)

(७) संवत्सरात्मिका गायत्री-२४ पक्ष गायत्री के २४ अक्षर हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यु-की ८-८ दिशायें भी गायत्री हैं।

संवत्सरो वै गायत्री । (तै.सं. २/४/३/२, मै.सं. ३/१/११)

देवाश्च वा असुराश्च संयत्ता आसन्, तान् गायत्र्यन्तरातिष्ठद् ओजो वीर्यमन्नाद्यं परिगृह्य, संवत्सरो वावैनान् सोऽन्तरातिष्ठत्, चतुर्विंशति गायत्र्या अक्षराणि, चतुर्विंशतिः संवत्सरस्यार्धमासाः, तेऽविदुर्यतवान् स इयमुपावर्त्स्यति । (काठक सं.१०/७)।

७. गायत्री का मूल प्रणव-प्रणव या ॐ (ओं कार) ही गायत्री का मूल है-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदु;।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

(ऋक्, १/१६४/३९, श्वेताश्वतर उप.४/८)

यास्क ने निरुक्त (१३/१/१०) में लिखा है कि ब्राह्मण और शाकपूणि निरुक्तकार मत से भी परम व्योम (शून्य) रूप प्रणव में ही सभी देवता स्थित हैं , जिस पर देवता तथा वेद आधारित हैं। यह सभी शास्त्रों में वर्णित हैं-

गीता-प्रणवः सर्ववेदेषु (७/८), ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म (८/१३),

वेद्यं पवित्रमोङ्कारः (९/१७)

वाज.यजु.-ॐ खं ब्रह्म(४०/१८), ॐ क्रतो स्मर (४०/१७)।

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि-ओम्-इत्येतत् । (कठ उप. १/२/१५)-१६, १७ भी।

इस प्रकार के हजारों उदाहरण हैं। ॐ -आकार धनुष-बाण का है, क्योंकि यह संसार-युद्ध से पार करता है। इसका विस्तृत वर्णन ऋग्वेद (६/७५), विशेषतः उसके सूक्त ३ में है। इसका सारांश मुण्डक-उपनिषद् (२/२/३-४) में है-

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं, शरं ह्युपासा निशितं संधयीत।

आयम्य तद् भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि।।३।।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्षणमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।४।।

ॐ के ४ पाद हैं-चत्वारि वाक् परिमितानि पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः। गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति, तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति।।(ऋक् १/१६४/४५)

इन पादों की व्याख्या माण्डूक्य उपनिषद् में है, जिसपर गौड़पाद की कारिका ४ खण्डों में है, वह भी इसका अङ्ग माना जाता है-

सोऽयमात्माध्यक्षर मोङ्कारोऽ धिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।।८।। अमात्रश्चतुर्थो ऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मना ऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद।१२।

इसे अर्द्धमात्रा भी कहा गया है-

अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः। (दुर्गा सप्तशती १/७४)-

(१) जागरित स्थान = वैश्वानर= ॐ की प्रथम मात्रा = अ

(२) स्वप्न स्थान = तैजस = ॐ की द्वितीय मात्रा = उ

(३) सुषुप्ति स्थान = प्राज्ञ = ॐ की तृतीय मात्रा = म

(४) तुरीय, तुरीयातीत = आत्मा का तुरीय पाद = तुरीय आत्मा = मात्रा शून्य ॐ

अर्द्ध मात्रा विन्दु के ९ बार आधे-आधे विभाजन होते हैं -१. विन्दु (वृत्त रूप-१/२ मात्रा), २. अर्धचन्द्र (अर्द्धवृत्त रूप १/४ मात्रा), ३. निरोधिनी (१/८ मात्रा), ४. नाद (१/१६ मात्रा), ५. नादान्त (१/३२ मात्रा), ६. व्यापिनी (१/६४ मात्रा), ७. शक्ति (१/१२८ मात्रा), ८. समना (१/२ ५६ मात्रा), ९. उन्मना (१/५१२ मात्रा) (वरिवस्या रहस्य में विस्तार से वर्णित)। इसका आध्यात्मिक रूप ९ प्रकार के अनाहत नाद हैं-जिनका वर्णन शिव पुराण, उमा संहिता, अध्याय ३६ में है। इनके नाम योग-

तन्त्र में कई प्रकार से हैं। ९ चक्रों को -अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या-अथर्ववेद (१०/२/३१) में कहा गया है। यहां सहस्रार को मिलाकर ९ चक्र होते हैं, उसके ब्रह्म-रन्ध्र को दशम-द्वार कहते हैं। उनके नाद ९ प्रकार के हैं, शक्ति के विन्दु भी ९ हैं। इसे ही ८ पद के वाक् के ९ स्रक् (शक्ति-विन्दु) कहा गया है-उच्छेद ६ में ऋक्(८/७६/१२) का उदाहरण। वेदों में १० आयामी विश्व (दशा, दिशा, दश, आशा-सभी के १० अर्थ हैं, १० महाविद्या) का वर्णन है-आकाश के ३, पदार्थ, काल, चिति या चेतन, ऋषि, नाग, रन्ध्र, रस या आनन्द। इसमें नवम रन्ध्र (कमी) ही आशनाया (भूख) है , जिसके कारण सृष्टि होती है - नवो-नवो भवति जायमानः (ऋक् १/८५/१९)। आकाश में सृष्टि के ९ सर्ग (क्रम) हैं-अव्यक्त को मिलाकर १० भागवत में है। इनके ९ प्रकार के कालमान सूर्य सिद्धान्त अध्याय १२ में हैं। इन नव से सृष्टि होने के कारण प्रणव (= प्र + नव) कहा जाता है। प्रणव के अन्य अर्थ है- जिसके उच्चारण से वेद ब्रह्मवेत्ताओं को प्रणाम कराते हैं-

अथ कस्मादुच्यते प्रणवः-यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजुः सामाथर्वाङ्गिरसं ब्रह्म ब्राह्मणेभ्यः प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणवः। (अथर्वशिर उप.४)।

अथवा सभी प्राणों को परमात्मा में लगाता है, अतः प्रणव है (अथर्वशिखोप.१)-

ओमित्येतदक्षरमादौ प्रयुक्तम्। प्राणान्सर्वान्परमात्मनि प्रणानयती त्येतस्मात्प्रणवः।

ओङ्कार का उच्चारण ओम (अ+उ+म) होने के कारण ओङ्कार कहते हैं, अथवा यह प्राणों को ऊपर उठाता है-

अथ कस्मादुच्यत ओङ्कारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणानूर्ध्वमुत्क्रामति तस्मा दुच्यते ओङ्कारः। (अथर्वशिर उप.४)।

गोपथ ब्राह्मण (१/१६-३०) में ओङ्कार सम्बन्धी ३६ प्रश्नों के उत्तर हैं। वहां इसके २ मूल धातु माने गये हैं-

(१) आप्लृ या आप् (= व्याप्ति अर्थ में, पाणिनि धातुपाठ ५/१५)-यह सबको घेरे हुये है (स भूमिं विश्वतो वृत्वा-पुरुष-सूक्त, १)।

(२) अव (= रक्षण- गति-कान्ति-प्रीति-तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वामी-अर्थ-याचन-क्रिया-इच्छा-दीप्ति-अवाप्ति-आलिङ्गन-हिंसा-आदान-गाव-वृद्धिषु-पाणिनि धातु-पाठ १/३९६)। अव्+मन् (अवतेष्टिलोपश्च -उणादि सूत्र) से टि (=अन्) का लोप होता है। तब ज्वरत्वरस्रिव्यविमवामुपधाश्च(६/४/२०) सूत्र से अव का ऊठ् (ऊ) होता है । ऊ का गुण होकर ओ होता है। अव्+ मन् = अव्+म् = ऊ+म् = ओम्।

माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार अप् से अ, उत् उपसर्ग का उ, और मा या मि धातु से म लेकर ओम् हुआ है-

अकारः प्रथमा मात्राऽऽप्तेरादिमत्त्वाद्वाऽऽप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद।९। उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वाद्वा।१०।, मकार तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा।११। एवमेवैता (भूर्भुवःस्वरिति) व्याहृतयस्त्रय्यै विद्यायै संश्लेषिण्यः।(कौषीतकि ब्रा.६/१२)

८. महा-व्याहृति

-आहृति के बाद इसमें अवयवों से विशेष गुण आते हैं , अतः यह व्याहृति है। इसी प्रकार कवल (कौर) लेकर उससे निर्माण करने वाला कवि या स्रष्टा है। तीन प्रकार की रचना सभी वर्गो के लिये है, अतः इसे महा (General) कहा जाता है। इनसे गायत्री द्वारा सृष्टि का विस्तार हुआ है-

व्याहृत्या गायत्र्यभवत्। (गायत्री रहस्य उ. १)

व्याहृतिं जागतं छन्दः...दर्शनमितीन्द्रियाण्यन्वभवन् (प्रणवोप.३)

ओङ्कार के निर्गुण या सगुण रूप से सामग्री का आहरण करके सृष्टि हुयी है-इसे संश्लेषण कहा गया है-

एतानि ह वै वेदानामन्तःश्लेषणानि यदेता (भूर्भुवःस्वरिति) व्याहृतयः।
(ऐतरेय ब्राह्मण ५/३३)

३ व्याहृतियों का नाम है - भूः, भुवः, स्वः-यह सभी प्रकार की त्रिविध सृष्टि का प्रतीक है। भू का सामान्य अर्थ है-पृथ्वी । स्वः लोक सूर्य का प्रभाव-क्षेत्र है-सौर मण्डल। इनके बीच में भुवः होने के कारण यह अन्तरिक्ष कहलाता है। सौर मण्डल पृथ्वी के आकार को ३० बार २ गुणा करने से, अर्थात् १०० कोटि गुणा है-

त्रिंशत् धाम वि-राजति वाक् पतङ्गाय धीयते ।

(ऋक् १०/१८९/३, साम ६३२, १३७८, अथर्व ६/३१/,२०/४८/६, वा. यजु. ३/८, तै. सं. १/५/३/१)

भुवः में चन्द्र-मण्डल ९ अहर्गण अर्थात् (९-३=) ६ बार पृथ्वी का २ गुणा होगा = ६४ गुणा। वराह-क्षेत्र १५ अहर्गण या पृथ्वी का $२^{१२}$ = ४०९६ गुणा है। १२ बार २ गुणा प्रायः ४१०० गुणा है। वायु पुराण (६/१२) के अनुसार यह सूर्य से १०० योजन ऊंचा है तथा इसका शरीर १० योजन चौड़ा है, अर्थात् १०० से ११० योजन वराह-स्थित पृथ्वी की दूरी है। सूर्य से पृथ्वी १०९ व्यास की दूरी पर है । अतः पृथ्वी से वराह की सीमा १० सूर्य व्यास, अर्थात् पृथ्वी त्रिज्या का २११६० गुणा है-

शतं (१००) महिषान् क्षीरपाक मोदनं वराहमिन्द्र एमुषम् । (ऋक् ८/७७/१०)

सूर्य से देखने पर उसके वायु के प्रवाह की सीमा ईषा-दण्ड है-

ईषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थः। (वा.यजु १/१)

इसका व्यास ६,००० योजन (सूर्य-व्यास) है । (विष्णु पुराण २/८/२ में परिधि १८००० योजन), अर्थात् प्रायः यूरेनस कक्षा तक।

उसमें पृथ्वी प्रादेश(१० अङ्गुल) की थी-

इयती ह वा इयमग्र पृथिव्यास प्रादेशमात्री, तामेमूष इति वराह उज्जघान, सोऽ स्याः (पृथिव्याः) पतिः प्रजापतिः।(शतपथ ब्रा. १४/१/२/११)

पूरी सृष्टि में ३ भूमि हैं-पृथ्वी, सौर मैत्रेय-मण्डल (१ लाख सूर्य व्यास त्रिज्या-विष्णु पुराण २/७/५), तथा ब्रह्माण्ड। ये तीनों सूर्य-चन्द्र से प्रकाशित हैं (विष्णु पु. २/७/४)। दोनों से प्रकाशित पृथ्वी, सूर्य का तेज प्रकाश-क्षेत्र मैत्रेय, तथा सूर्य प्रकाश की अन्तिम सीमा ब्रह्माण्ड (सूर्य-सिद्धान्त, १२/८०)। सभी पृथ्वी के आकाश उससे कोटि गुणा बड़े हैं, जितना मनुष्य तुलना में पृथ्वी है (विष्णु पु.२/७/६) -

रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते। स समुद्र सरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता।।३।।

यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तार परिमण्डलात्। नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यास मण्डलतो द्विज।।४।।

भूमेर्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय मण्डलम् ।।५।। (विष्णु.पु. २/७)

अतः पृथ्वी, मैत्रेय, ब्रह्माण्ड, तथा उसका आकाश स्वयम्भू (सत्य-लोक) क्रमशः कोटि-कोटि गुणा बड़े हैं। प्रत्येक भूमि-द्यौ का युग्म १-१ धाम हैं -पृथ्वी- सूर्य अवम, सूर्य-ब्रह्माण्ड मध्यम, तथा ब्रह्माण्ड-सत्य परम-धाम हैं । (ऋक् १०/८१/५ आदि)। तीनों को मिला कर परात्पर धाम है। इन ४ धामों के क्षेत्र में फैला पदार्थ ४ समुद्र हैं-अर्णव, सरस्वान्, नभस्वान्, रस (आनन्द)। अतः कालिदास ने रघुवंश (२/३) में-पयोधरी भूत चतुः समुद्रां-कहा है। पृथ्वी ७ द्वीप और ७ समुद्र वाली है। प्रत्येक धाम के ३-३ लोक होने से ९ लोक होने चाहिए, किन्तु बीच के २ लोक २ धामों में हैं, अतः ७ लोक हैं-

धाम	खण्ड	लोक	आकार
अवम	भू	भू	१००० योजन व्यास
	भुवः	भुवः	पृथ्वी का ४००० गुणा
मध्यम	भू स्वः	स्वः	पृथ्वी का १०० कोटि गुणा
	भुवः	महः	सूर्य व्यास का १००० कोटि गुणा
परम	भू स्वः	जनः	महः का १०० गुणा
	भुवः	तपः	८६४ कोटि प्रकाश वर्ष त्रिज्या
	स्वः	सत्य	१०० अरब प्रकाश वर्ष

ओङ्कार में ३ भाग मिले हुए हैं, व्याहृति में अलग-अलग हैं।

९. शब्दार्थ-अन्वय अनुसार १० पदों का अर्थ-(१) यः-आध्यात्मिक, अधिभौतिक, आधिदैवत-इन ३ तत्त्वों का प्रत्यक्ष-परोक्ष-अपरोक्ष सविता-तथा उनका अन्तर्यामी-तथा हमारी अन्तरात्मा-इन ३ अर्थो का संग्रह।

(२) नः-अस्मद् (हम) शब्द की षष्ठी-चतुर्थी-द्वितीया विभक्ति द्वारा हमें, हमारे लिए, हमारा अर्थ -

युष्मदस्मदोः षष्ठी चतुर्थी द्वितीया स्थयोर्वा । (पा.सू. ८/१/१०)

बहुवचनस्य वसूनसौ (२१)।

यथा-सुखं वा नौ ददात्वीशः पतिर्वामपि नौ हरिः।

सोऽ व्ययात् वो नः शिवं वो नो दद्यात् सेव्योऽत्र वः स नः।

सविता के ३ कार्य-हमारी प्रेरणा, हमें प्रति प्रेरित विषयों में लगाने वाला, हमारे लिए अभीष्ट दायक-

प्रेरयन्नोधियोऽ स्माकं यो ऽस्मान् प्रतिधियो नुताः। यो ऽ स्मभ्यं सर्वदोऽ भीष्टः सविता ऽ सौ च सो ऽप्ययम्।

(३) धियः-धी इन्द्रिय का इन्द्र रूप होने से ३ अर्थ-जिनका आत्मा द्वारा धारण हो वह धियः, जो आत्मा को धारण करे, या आत्मा में विषयों को धारण करे-

इन्द्रियमिन्द्रलिङ्गमिन्द्रदृष्टमिन्द्रसृष्टमिन्द्रजुष्टमिन्द्रदत्तमिति वा (पाणिनि सूत्र ५/२/९३), धीङ् आधारे (पाणिनि धातु पाठ ४/२६)

(४) प्रचोदयात्-चुद् सञ्चोदने ((१०/६१)-प्रेरणा देना। नुद् प्रेरणे(६/२) भी प्रेरणा अर्थ में है-दोनों में अन्तर है-बाहर से प्रभावित करना नुद् (प्रणोद, विनोद) है, भीतर प्रभावित करना चुद् है। धी की आन्तरिक प्रेरणा ३ प्रकार की है-प्रवृत्ति (सत्कार्य में), निवृत्ति (असद् काम से), निष्ठा (आत्मा और परमात्मा में)।

(५) देवस्य-देव का। जो स्वयं प्रकाशित है, या दूसरों को प्रकाशित करे, वह देव है-दिव् (दिवु) क्रीडा-विजिगीषा-व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु (पाणिनि धातु पाठ ४/१)

द्युत दीप्तौ (१/४९३)-प्रकाशित करना। यह सविता शब्द का विशेषण है।

(६) सवितुः- सवितृ पुल्लिङ्ग शब्द का षष्ठी रूप= सविता का-

षूङ् प्रणिगर्भविमोचने (प्राणि प्रसवे)(२/२४, ४/२२)) षू (सू) प्रेरणे(६/११७)

सभी भूतों प्राणियों का प्रसव या प्रेरणा देने वाला सविता है । प्रसव दो प्रकार का है-उत्पादन या प्रेरणा।

सूर्य आत्मा जगतस्तथुषश्च । (ऋक् १/११५/१, वा. यजु.७/४२,१३/४६, तै. सं. १/४/४३/१, २/४/१४/४, अथर्व १३/२/३५, २०/१०७/१४, तै. ब्रा. २/८, ७/३, तै.आ. १/७/६, २/११/३)

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ् उदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे।

(ऋक् १/५०/५, अथर्व १३/२/२०, २०/४७/१७)

योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि । (वा.य. ४०/१६)

(७) तत्-परोक्ष या दूर की वस्तु-तदितिपरोक्षेविजानीयात्-

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम् । (ऋक् १०/१२०/१)

तत् सवितुर्वृणीमहे श्रेष्ठं सर्वधातमम् । (ऋक् ५/८२/१)

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः। (गीता १७/२३)

(८) वरेण्यम्-वृञ् वरणे (५/८), वृञ् आवरणे (१०/२३७)-अर्थात् वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, आवरण में अदृश्य।

(९) भर्गः-भ्रस्ज पाके(६/४)-पकाना। इसी से भृगु हुआ है, जो रेत (बिखरे पदार्थ) को एकत्र कर पकाता है-

ताभ्यः श्रान्ताभ्यस्तप्ताभ्यः संतप्ताभ्यो(अद्भ्य) यद्रेत आसीत्तदभृज्यत यदभृज्यत तस्माद् भृगुः समभवत् तद् भृगो र्भृगुत्वम्। (गोपथ पूर्व १/३)।

रुद्र भी भर्ग है-हरः स्मरहरो भर्गः(अमरकोष १/१)।

अतः भर्ग (भृगु) का अर्थ है-तेजस्वी, शक्तिशाली, जो सबको एक साथ पकड़ कर पका सके।

(१०) धीमहि-ध्यै चिन्तायाम् (१/६४८) या धीङ् आधारे (४/२६)। अर्थात् ध्यान करना, विचार करना, या मन का आधार बुद्धि। धीमहि = ध्यायामि = ध्यायेमहि (वैदिक प्रयोग)= समझता हूं, विचार करता हूं, मन (स्मृति) में धारण करता हूं-ध्यायेमहि प्रतेवयम् (ऋक्)।

बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।।३।। मनसस्तु परा बुद्धिः।।१०।(कठोप.१/३)

अब मूल मन्त्र के शब्दार्थ का विचार करें। मन्त्र है-

ॐ भूर्भुवः स्वः, तत् सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।

शब्दार्थ- ॐ (ब्रह्म) से भूः,भुवः,स्वः हुए। वह(ब्रह्म) सबका जन्मदाता है, श्रेष्ठ और बुद्धि से परे है। उस का तेज रूप समझते हैं। वह हमारी बुद्धि को प्रेरित करे।

१०. पौराणिक अर्थ-जगद् गुरु स्वामी निश्चलानन्द सरस्वती जी ने शुक-सुधा में श्रीमद् भागवत के प्रथम श्लोक की वेद-परक व्याख्या की है। उनके अनुसार-

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थ विनिर्णयः।
गायत्री भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थ परिबृंहितः।।(गरुड पुराण)

अर्थात् श्रीमद् भागवत पुराण ब्रह्मसूत्रों का अर्थ, महाभारत-सार, गायत्री-भाष्य तथा वेदार्थ-प्रतिपादक है। प्रथम श्लोक-

जन्माद्यस्य यतोऽ न्वयादितरतश्चार्थेश्वभिज्ञः स्वराट् ,
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजो वारि मृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा,
धाम्ना स्वेन सदा निरस्त कुह कं सत्यं परं धीमहि।।१।।

अर्थ-इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय जिस परमात्मा से है, जो कार्य-प्रपञ्च में प्रविष्ट तथा उससे व्यतिरिक्त भी होने से स्वतः सिद्ध, सर्वज्ञ, स्वप्रकाश है; जिसने ब्रह्मा के हृदय में वेदों को प्रकाशित किया, जिसमें विचार कुशल विद्वान् भी मोहित होते हैं; तेज, जल, मिट्टी का जैसे परस्पर विनिमय (आभास) होता है, वैसे ही जिसमें त्रिगुणात्मक जगत् सत्य-जैसा दीखता है, अपने स्वरूप वैभव से माया को दूर हटाने वाले उस परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।

ब्रह्म-सूत्र से समतुल्यता-
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा(१/१/१) = निरस्त कुह कं सत्यं परं धीमहि
जन्माद्यस्य यतः (१/१/२)- वही है; शास्त्रयोनित्वात् (१/१/३)= तेने ब्रह्म
तत्तु समन्वयात् (१/१/४)= (अर्थेषु) अन्वयात्;
ईक्षतेर्नाशब्दम् (१/१/५) = अर्थेष्वभिज्ञः
एतेन सर्वे व्याख्याता (१/४/२९) आदि समन्वय नामक प्रथम अध्याय
= मुह्यन्ति यत्सूरयः
तदनन्यत्वमा रम्भणशब्दादिभ्यः (२/१/१४) सूचित द्वितीय अविरोध अध्याय
= तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा

सह कार्यान्तरविधिः वक्षेण तद्वतो विध्यादिवत् (३/४/४७) सूचित तृतीय साधनाध्याय
= सत्यं परं धीमहि।
परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् (४/३/१२) सूचित चतुर्थ फलाध्याय
= धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुह कं सत्यं परं।
गायत्री मन्त्र से समतुल्यता-तत्सवितुः देवस्य = जन्माद्यस्य यतः।
धियो यो नः प्रचोदयात् = स्वराट्, धीमहि (=ध्यायेम) का यथावत् प्रयोग,
पादार्थ-छन्द उपयोग विषय में कहा गया है कि पाद अनुसार ही उसका अर्थ होता है-
तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था । (मीमांसा-सूत्र, २/१/३५)
वेद के ५ पर्वो के अधिष्ठाता ५ देव हैं-

पर्व-स्वायम्भुव	परमेष्ठी	सौर	चान्द्र	भू
देवता-ब्रह्मा	विष्णु	इन्द्र	सोम	अग्नि
तत्त्व- आकाश	वायु	तेज	सोम	पृथिवी

इसमें अन्तिम ३ को शिव का ३ नेत्र कहा जाता है-
अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ । (मुण्डक उप. २/१/४)।
वेद में रुद्र के शिव (शान्त) और घोर रूप का वर्णन है-
या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा ऽपापकाशिनी।(वा. यजु. १६/२)
शिव के ३ पद हैं-शिव, शिवतर, शिवतम-
नमः शिवाय च शिवतराय च। (वा. यजु. १६/४१, ऋक् १०/९/१)
यो वः शिवतमो रसः । (वा. यजु. ११/५१, ३६/१५; ऋक् १०/९/२)।
सूर्य के निकट का क्षेत्र भीषण ताप होने से रुद्र है। १०० व्यास की दूरी पर शान्त-क्षेत्र आरम्भ होता है , अतः १०० को शत (शान्त) कहा जाता है (शतपथ ब्रा.९/१/१/७; ९/१/१/२)। आरम्भ को शीर्ष कहते है (ऊर्ध्वमूलमधः शाखं-गीता (१५/१), अतः यहां स्थित चन्द्र शिव के सिर पर है, तथा चन्द्र-सूर्य-पृथ्वी(अग्नि) उसके तीन नेत्र हैं। सहस्र, लक्ष रुद्री शिवतर तथा उसके बाद शिवतम क्षेत्र है।

परम-पद अव्यक्त, निराकार है- वह महेश्वर, स्वयम्भू-लिङ्ग आदि कहा जाता है। अत: ५ वैदिक देवों का ३ पौराणिक वेद-सम्मत देवताओं में समन्वय है-ब्रह्मा, विष्णु, शिव। गायत्री के ३ पद इसकी व्याख्या हैं-

तत् सवितुर्वरेण्यं-सौर रोदसी मण्डल का केन्द्र सूर्य पिता है-यह तेज की वर्षा करने से वृषा या पुरुष रूप है। उसके कारण सृष्टि होने से वह पिता है। उसका जन्म परमेष्ठी से हुआ जो पितामह है। उसका स्रोत स्वयम्भू प्रपितामह कहा जा सकता है। अन्त में सबकी उत्पत्ति निराकार ब्रह्म से है-जगदव्यक्तमूर्त्तिना (गीता ९/४)। वह परम स्रष्टा ही तत् सविता है। सृष्टि कर्त्ता रूप को ब्रह्मा कहा गया है।

भर्गो देवस्य धीमहि-निराकार ब्रह्म बोधगम्य नहीं है, उसका जो प्रकाशित रूप है , वही दीख सकता है। अत: प्रकाश केन्द्र सूर्य ही भर्गो देव है। वह प्रकाशमान तथा पृथ्वी को धारण करने-दोनों अर्थों में भर्ग है-

पृथिवी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । (भूमि पूजन का मन्त्र)

(= आदित्य:) स य: स विष्णुर्यज्ञ: स। स य: स यज्ञोऽ सौ स आदित्य:। (शतपथ ब्राह्मण १४/१/१/१)

या सा द्वितीया (ओङ्कारस्य) मात्रा विष्णुदेवत्या । (गोपथ ब्राह्मण पूर्व १/२५)

तद्वाऽअहोरात्रेऽ एव विष्णुक्रमा भवन्ति । (शतपथ ब्राह्मण ६/७/४/१२)

धियो यो न: प्रचोदयात्-बुद्धि को प्रेरित करने वाले शिव हैं, शिव से ही तन्त्र की गुरु परम्परा आरम्भ हुयी है। यह ऋषियों के ऋषभ (प्रेरक) या वृषभ हैं-

स मे ऋषीणामृषभ: प्रसीदतु। (भागवत पुराण,२/४/२०)

वृषभ शिव का वाहन है।

शिवो न: सुमना भव । (वा.यजु. १६/५१)

११. त्रितार या गुप्त प्रणव-ब्रह्म का तीन प्रकार से वर्णन होता है - ॐ , तत्, सत्-

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध: स्मृत:। (गीता १७/२३)

ॐ तत् सत् = ईं ॐ श्री: । यहां तत् = ईं = जगद्-ईश-जीवात्मा का एकत्व। यह गुप्त प्रणव वेदों मे कई बार आया है-

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।(ऋक् १/१६४/३२)

यहां प्रत्यक्ष जगत् का निदर्शक ईंकार है-

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमवग्लापयन्ति(ऋक् १/१६४/१०)

नेमवग्लापयन्ति = न + ईं + अवग्लापयन्ति-अर्थात् उस परम पुरुष को नहीं देख पाते। यह गुहा या परोक्ष अन्तरात्मा का दर्शक है -

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा य: ससाद धारामृतस्य। (ऋक् १/६७/४)

श्री-सूक्त में भी- तां पद्मिनीमीं (= पद्मिनीं + ईं) शरणमहं प्रपद्ये।

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्म संमितम्।
गायत्री छन्दसां माता इदं ब्रह्म जुषस्व मे।
(तैत्तिरीय आ. १०/३४, नारायण उप.१५/१)

ईङ्काराय स्वाहा। ईङ्कृताय स्वाहा। (तैत्तिरीय सं. ७/१/१९/९)

श्री लक्ष्मी का बीजाक्षर है, शक्ति रूप में परम-पुरुष की पत्नी है-

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यौ । (वा.यजु. ३०/३२)

ज्ञान-प्रधान परम-पुरुष (जगन्नाथ) की इच्छा-क्रिया शक्ति रूप दो शक्तियां वाम-दक्षिण भाग में हैं -श्री-जो यश तेज आदि दे (विमला), लक्ष्य या दृश्य रूप में लक्ष्मी। श्री का त्रयी रूप-

अहे बुध्निय मन्त्रं मे गोपाय। यमृषस्त्रयि विदा विदु:।
ऋच: सामानि यजूंषि। सा हि श्रीरमृता सताम्। (तैत्तिरीय ब्रा.१/२/१/६९)

इस प्रकार -ॐ =व्यक्त प्रणव, ईं = गुप्त प्रणव, श्री: =शाक्त प्रणव -तीनों के ३-३ खण्ड हैं। तन्त्र के मन्त्रों का अन्त भी श्रीं से होता है-

ॐ ह्लीं श्रीं (षोडशी मन्त्र), ऐं ह्लीं श्रीं (त्रितार मन्त्र)।

ईं = इ + ई +म् । इ = इह (यहां) लोक।

ई = दृश्य जगत् (ई गति-व्याप्ति-ब्रजन-कान्त्यसन-खादनेषु, २/४१), म् =ब्रह्म

श्रीं = श + र + ईं। श + महालक्ष्मी, र = धन, ई =तुष्टि।

ह्लीं -ह = शिव, र = प्रकृति, ई = महामाया। नाद (अनुस्वार)-विश्वाम्बा।
इसी प्रकार के कई अन्य अर्थ भी किये जा सकते हैं।

१२. शिव-हनुमान - परम शिव या (शिव+शक्ति) के अभेद रूप से ही सृष्टि हुयी है -प्रथम पद।

द्वितीय पद-शिव का तेज रूप कई स्तरों में है-(१) सूर्य से १०० योजन(=व्यास) तक-ताप या रुद्र-क्षेत्र-

शत योजने ह वा एष (आदित्य:) इतस्तपति । (कौषीतकि ब्रा.८/३)

शतं विधा एष (आदित्य:) एवैक शततमो य एष तपति। (शतपथ ब्रा.१०/२/४/३)

(२) सूर्य से १००० व्यास तक रश्मि-क्षेत्र-सहस्रं हैत आदित्यस्य रश्मय:। (जैमिनीय उप.ब्रा. १/४४/५)

(३) लक्ष और कोटि योजन तक लक्ष, कोटि-रुद्रिय क्षेत्र।

(४) कोटि व्यास तक सूर्य क्षेत्र के बाद सदाशिव या महर्लोक का महादेव। १०० से कोटि व्यास तक रुद्र-शिव दोनों है, १०० व्यास के भीतर केवल रुद्र क्षेत्र है।

तृतीय पाद-शैव दर्शन में चेतना के कई स्तर हैं-शिव-शक्ति अभेद, भेद (सदाशिव), ईश्वर (=नियन्त्रक, गीता १८/६१)। शरीर के भीतर आज्ञा चक्र ही ज्ञान का केन्द्र है, उसके त्रिकूट पर शिव का निवास है। शिव-लिङ्ग भी तीन प्रकार के हैं-

मूल स्वरूप लिङ्गत्वान्मूलमन्त्र इति स्मृत:।
सूक्ष्मत्वात्कारणत्वाच्च लयनाद् गमनादपि।
लक्षणात्परमेशस्य लिङ्गमित्यभिधीयते।। (योगशिखोपनिषद् २/९,१०)

स्वयम्भू-लिङ्ग सृष्टि का मूल कारण है, उसी में इसका पुन: लय होता है। बाण लिङ्ग गति की दिशा दिखाता है -यह भर्ग वा तेज रूप है-हर: स्मर हरो भर्ग: (अमरकोष १/१/३३)। परमेश्वर के लक्षण अनन्त हैं , किन्तु उनका आभास १२ आदित्यों के अनुसार १२ प्रकार का है। इनका ज्ञान मस्तिष्क के इतराख्य (इतर=अलग) लिङ्ग से होता है।

हनुमान्-सृष्टि कर्त्ता रूप को वेद में वृषाकपि कहा गया है। वृषा का अर्थ है वर्षण, उत्सर्ग करने वाला, जिस केन्द्र से उत्सर्ग हो वह पुरुष है। जिस क्षेत्र में इसका ग्रहण हो, वह योषा (युक्त होने वाला) या स्त्री है। कपि का अर्थ है-जल या रस रूप पदार्थ का पान करना, सबका ग्रहण कर उनसे सृष्टि करना सर्वहुत यज्ञ है-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत: ऋच: सामानि जज्ञिरे-(पुरुष सूक्त,७)।

यह शिव रूपी इच्छा का अवतार या परिणाम है। सर्वहुत यज्ञ द्वारा विश्व की प्रतिमा बनती है-स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र, भू-ये सभी क्रमश: प्रतिमा हैं-

स ऐक्षत प्रजापति:(स्वयम्भू:)-इमं वा आत्मन: प्रतिमामसृक्षि। आत्मनो ह्येत प्रतिमामसृजत। ता वा एता: प्रजापतेरधिदेवता असृज्यन्त-(१)-अग्नि: (तद्गर्भितो भूपिण्डश्च), (२) इन्द्र: (तद्गर्भित: सूर्यश्च), (३) सोम:(तद्गर्भितश्चन्द्रश्च), (४) परमेष्ठी प्राजापत्य: (स्वायम्भुव:)- शतपथ ब्रा. (११/६/१२,१३)।

सर्वहुत यज्ञ शतपथ (१२/१/३/१,२) में है। कपि (copy) या अनुकरण गुण वाला पशु भी कपि कहलाता है। अत: वृषाकपि और मूल स्रष्टा एक ही हैं-

तत्र गत्वा जगन्नाथं वासुदेवं वृषा कपिम्।
पुरुषं पुरुष सूक्तेन उपतस्थे समाहित:।।(भागवत पुराण १०/१/२०)

ततो विभु: प्रवर वराह रूपधृक् वृषाकपि: प्रसभमथैकदंष्ट्रया। (हरिवंश पुराण २१६/४७)

भर्ग रूप-रुद्र या शिव के तेज द्वारा गति या प्रवाह होता है, उसके स्तर मरुत् है। पृथ्वी माप से ब्रह्माण्ड का विस्तार ४९ अहर्गण तक है, अर्थात् पृथ्वी का ४६ बार २ गुणा, ३ स्तर पृथ्वी के भीतर हैं। ४९ क्षेत्रों का प्रवाह ४९ मरुत् हैं,

उसके बाद उसकी सन्तान ५० वें अहर्गण पर है। इस सीमा के भीतर विष्णु का परम-पद ब्रह्माण्ड है। सौर मण्डल में सौर वायु का प्रवाह ईषादण्ड (ईषेत्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ:-वा. यजु.१/१), जिसका व्यास ६००० योजन(सूर्य-व्यास) है (विष्णु पु. १/२/८ में परिधि), उसके बाद उसकी सन्तान हनुमान है। सूर्य रूपी विष्णु के ३

पद तथा उसका परमपद दोनों हनुमान के भीतर है। उनके मनुष्य (वा नर जाति) रूप के हृदय में भी राम हैं (राम का राज्याभिषेक)।

धी-प्रेरक-ब्रह्माण्ड के १ खर्व कण स्वयम्भू के खर्व कणों की प्रतिमा हैं, उनकी प्रतिमा मनुष्य मस्तिष्क में भी खर्व कण हैं । अतः परम-गुहा ब्रह्माण्ड (कठ उप.१/३/१) के मन की सीमा हनुमान है, उसका परिभ्रमण-काल (३१ कोटि वर्ष) मन्वन्तर है। सूर्य रूपी बुद्धि के चारो तरफ भी हनुमान है। (मनुष्य रूप में सूर्य-शिष्य बनकर परिक्रमा)। मन-बुद्धि के नियन्त्रक-रूप में हनुमान मनोजव हैं - मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठं। मनोजवित्व सिद्धि का वर्णन योगसूत्र (३/४९) मे है। ऋक् (१०/७१/७, ८) में भी मनोजव द्वारा ज्ञान का वर्णन है। मस्तिष्क के भीतर शिखा-स्थान का विन्दु-चक्र हनुमान का स्थान है, उनके मुख का रूप और पुच्छ ॐ का आकार है।

१३. शाक्त-व्याख्या-शक्ति रूप में वेद की ३ देवियां गायत्री के ३ पाद हैं - भारती, इला, सरस्वती -

(१) इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः।।(ऋक् १/१३/९, ५/११/८)

(२) भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे। ता नश्चोदयत श्रिये।।(ऋक् १/१८८/८)

(३) शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती। इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः।।(ऋक् १/१४२/९)

(४) भारती पवमानस्य सरस्वतीळा मही। इमं नो यज्ञमागमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः।।(ऋक् ९/५/८)

(५) सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रो देवी स्वधया बर्हि रेमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य।।(ऋक् २/३/८)

(६) आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं सदन्तु।

(ऋक् ३/४/८, ७/२/८)

(७) तिस्रो देवीर्बर्हि रिदं वरीय आसीदत चकृमा वः स्योनम्।
मनुष्वद् यज्ञं सुधिता हवींषीळा घृतपदी जुषन्त।।(ऋक् १०/७०/८)

(८) आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती।
तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु।।(ऋक् १०/११०/८)

निरुक्त(८/१३) के अनुसार भरत आदित्य तथा उसकी भा भारती है। आदित्य वह क्षेत्र और पदार्थ है, जिससे निर्माण का आदि हुआ है-स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर के आदित्य क्रमशः अर्यमा, वरुण, मित्र हैं (ऋक् २/२७/८)। उनका प्रभाव-क्षेत्र भारती सृष्टि का मूल है-ब्राह्मी तु भारती। (अमरकोष १/६/१)

इला भूमि है जो सृष्टि का प्रकट रूप है। भूमि ३ हैं-ब्रह्माण्ड, सौर मैत्रेय मण्डल, पृथ्वी। अमरकोष(३/३/४२) में इला का अर्थ गो (किरण), भू, वाक्, इडा हैं-
गोभूवाचस्त्विडा इला।

सरस्वती स्पष्टतः बुद्धि की प्रेरक है-ऊपर का (५), तथा-
शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।(ऋक् ७/३५/११)।
चोदयित्री सूनृतानां चेतयन्ती सुमतीनाम्। (ऋक् १/३/११)

मार्कण्डेय पुराण के दुर्गा सप्तशती के तीन चरित्र, गायत्री के ३ पद हैं - प्रथम चरित्र महाकाली द्वारा सृष्टि हुयी है, उसी में ब्रह्मा का जन्म हुआ है। द्वितीय चरित्र में महालक्ष्मी की उत्पत्ति विष्णु की प्रेरणा से है। तृतीय चरित्र में सरस्वती द्वारा सबके एकत्व का ज्ञान होता है। इनके बीज मन्त्र -क्रीं, ह्रीं, ऐं - हैं।

१४. कुछ अन्य त्रिक-(१) सत्-श्री-अकाल-सत् का अर्थ है -जो दिखायी दे। जो पदार्थ एक आवरण में हो वही आकार दीखता है। आवरण को बलभद्र कहते हैं-
बल = वक्र(बल पड़ना) शक्ति के कारण पदार्थ की गति वक्र होती है, अतः शक्ति को भी बल कहते हैं। भद्र = रचना।
सुभद्रा= भद्र के भीतर का क्षेत्र।
अकाल-पुरुष = जगन्नाथ। काल के ३ रूपों के कारण ३ प्रकार के पुरुष हैं-

नित्य-काल जो सदा क्षरण (Decay) करता है-कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो (गीता ११/३२)-क्षर-पुरुष जो भौतिक रूप है, और सदा क्षय होता रहता है।

जन्यकाल, जो चक्रीय क्रम के यज्ञकाल की माप है, और विज्ञान की गणना में प्रयोग होता है-काल: कलयतामहं। (गीता १०/३०)-अक्षर-पुरुष जो कूटस्थ या कार्य रूपमें परिचय है।

अक्षय-काल-मूलस्रोत से निर्माण द्वारा कुल पदार्थ वही रहता है, भौतिक विज्ञान में ५ प्रकार के संरक्षण सिद्धान्त हैं। कुल मात्रा की स्थिरता अव्यय पुरुष है। मनुष्य का वातावरण से निर्माण वृक्ष (दारु) द्वारा होता है, अत: इसे दारु-ब्रह्म भी कहा जाता है। यह क्षर-अक्षर से उत्तम होने के कारण पुरुषोत्तम कहलाता है। यह अक्षय-काल से सम्बन्धित होने के कारण अकाल-पुरुष है-अहमेवाक्षय: कालो (गीता १०/३३)। गुरु ग्रन्थ साहब का आरम्भ पुरुष के वर्णन से ही हुआ है।

(२) सत्-चित्-आनन्द-चित् का अर्थ है -शून्य आयतन का आकाश या विन्दुमात्र। हर विन्दु में कुछ सत् या अनुभवगम्य पदार्थ है। आनन्द या रस रूप में ब्रह्म हर स्थान पर है-रसो वै स:,रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति (तैत्तिरीय उप.२/७/२)

(३) शंकर-शं ब्रह्म = खं +कं +रं ब्रह्म।

ॐ खं ब्रह्म खं पुराणं वायु रं खमिति ह स्माह ...(बृहदारण्यक उप.५/१/१)

खं मनो बुद्धिरेव च। (भ. गीता ७/४)।

अत: खं का अर्थ ब्रह्म या उसकी पहली सृष्टि आकाश है। कं का अर्थ प्राण या प्रजापति रूप में क्रियात्मक रूप है-

को नाम प्रजापतिरभवत्को वै नाम प्रजापति।(ऐतरेय ब्रा.३/२१)

को वै प्रजापति:।(गोपथ ब्रा.उ.६/३)

कस्मै देवाय हविषा विधेम। (वा. यजु.१२/१०२),

कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् । (वा. यजु.११/३९)।

यहां क प्रजापति है -प्रजापतिर्वै क: ।(ऐत. ब्रा. २/३८, ६/२१; कौषीतकि ब्रा. ५//४,२४/४, ५/९; ताण्ड्य महा ब्रा.७/८/३; शतपथ ब्रा.६/४/३/४, ७/

३/१/२०; तैत्तिरीय ब्रा.२/२/५/५; जैमिनीय उप.ब्रा. ३/२/१०; गोपथ ब्रा. उ. १/२२)

रं ब्रह्म-हर स्थान पर बिखरा हुआ प्राण या ऊर्जा रं है-

प्राणो वै रं प्राणे हीमानि सर्वाणि भूतानि रतानि।

(शतपथ ब्रा. १४/८/१३/३, अर्थात् बृहदारण्यक उप. ५/१२/१)

रकारो वह्नि वचन: प्रकाश: पर्यवस्यति। (रामरहस्य उप.५/४)

र इति रञ्जयतीमानि भूतानि। (मैत्रायणी उप.६/७)।

खं, कं, रं-इन तीन का योग शं अर्थात् शान्ति (शम), या कल्याण है-

शं नो मित्र: शं वरुण: शं नो भवत्वर्यमा ।

शं नो इन्द्रो वृहस्पति: शं नो विष्णुरुरुक्रम: ।।

(ऋक् १/९०/९, अथर्व १९/९/६, वा.य.३६/९, तै.आ.७/१/१)

खं = आकाश या आवपन (क्रिया का स्थान), क = कर्त्ता, अन्न, सुख, रं = प्राण, अन्नाद (भोक्ता), रमणशील। सुखसाधक कं ब्रह्म की रं ब्रह्म में आहुति होने पर कं तृप्त होकर शं ब्रह्म बन जाता है।

कं ब्रह्म (अन्न)	आवपन	
	आधिदैविक	अध्यात्म
वाक्	स्वयम्भू	अव्यक्त आत्मा
रयि	परमेष्ठी	महान् आत्मा
धिषणा	सौर	विज्ञान आत्मा
प्रज्ञा	चान्द्र	प्रज्ञान आत्मा
भूत	पृथिवी	भूतात्मा

(४) माण्डूक्य उपनिषद् के अनुसार ॐ के विभाग-

	अ	उ	म	विन्दु
काल	भूत	भवत्	भविष्यत्	कालातीत
प्रज्ञा	जाग्रत	स्वप्न	सुषुप्ति	तुरीय

भोक्तात्मा	वैश्वानर	तैजस	प्राज्ञ	अक्षर
भोग	स्थूल	प्रविविक्त	आनन्द	द्रष्टामात्र

१५. धी योग-गायत्री का उद्देश्य है-धीमहि = धारणा + ध्यान + समाधि। इनका अभ्यास ही धी-योग है-

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगसिन्वति।।(ऋक्.१/१८/७)

तां योगमिति मन्यते स्थिरमिन्द्रिया रणाम्। (कठो प. २/३/११)

इसकी साधना आन्तरिक धी इन्द्रिय से होती है-

देवं नरं सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः। नमस्यन्ति धियेषिताः। (ऋक्.३/६२/१२)

उपत्वाऽग्नेदिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।

नमो भरन्त एमसि।।(ऋक्.१/१/७)

इसे गीता (४/२८) में ज्ञान-यज्ञ कहा है।

१६. गायत्री का स्वरूप-गायत्री पुरश्चरण पद्धति के अनुसार गायत्री का स्वरूप इस प्रकार है-

(१) गोत्र-सांख्यायन,(२) वर्ण-३२,(३) पाद-४, (४) अक्षर २४,(५) कुक्षि-८ दिशायें-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, अधः, अन्तरिक्ष, अवान्तर।(६) सिर-७-व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास-पुराण, उपनिषद्, (७) रूप-पूर्व सन्ध्या-गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सरस्वती, (८) वेष-गायत्री बाला-रक्तवर्णा रक्तवस्त्रा। सावित्री-श्वेतवर्णा। सरस्वती-कृष्णवर्णा।(९) हृदय=विष्णु, शिखा=रुद्र, कवच=ब्रह्मादिक।(१०) मुख-५-(क) ॐ, (ख) भूर्भुवःस्वः, (ग) तत्सवितुर्वरेण्यम्, (घ) भर्गो देवस्य धीमहि, (ङ) धियो यो नः प्रचो दयात्।। या ४ वेद + यज्ञ। गायत्री के ५ मुख के प्रतीक हैं-

(१) ५ कोष, (२) ५ ज्ञानेन्द्रिय, (३) ५ कर्मेन्द्रिय, (४) ५ प्राण, (५) ५ उपप्राण, (६) ५ तन्मात्रा, (७) ५ विषय, (८) ५ महाभूत, (९) ५ यज्ञ, (१०) ५ अवस्था,

(११) ५ शूल, (१२) ५ क्लेश, (१३) भगवान् शिव के ५ मुख, (१४) ५ आकाश, (१५) ४ वेद+ यज्ञ, आदि।

गायत्री -यन्त्र के भी ५ चक्र हैं-

(१) बिन्दु-अपदा गायत्री -विन्दु के सूक्ष्म विभाग बिना पद के हैं, अर्ध मात्रा का विन्दु चतुर्थ पद है-

अमात्रश्चतुर्थः। (माण्डूक्य उप.), अपदसि नहि पद्यसे, नमस्ते तुरी याय दर्शताय पदाय। (बृहदारण्यक उप.५/१४/७)

अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम्। (ऋक्.१/१५२/३),

अपादग्रे समभवत्।(अथर्व १०/८/२१)

अमात्रं त्वां धिषणात्विषेमहि। (ऋक्.१/१०२/७)

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति। (ऋक्.७/९९/१)

(२) त्रिकोण में ३ वेद, ३ व्याहृति, ३ भुवन, ३ देवता, ३ आत्मा की ज्योति, ३ करण, ३ शक्ति हैं।

(३) षट् कोण- ६ कुक्षि-४ दिशा, ऊर्ध्व, अधः। आपस्तम्ब गृह्य-सूत्र परिशिष्ट में षडङ्ग-न्यास मन्त्र के ६ खण्डों के अनुसार है-

तत्सवितुः, वरेण्यं, भर्गो देवस्य, धीमहि, धियो योनः, प्रचोदयात्।

(४) अष्ट दल कमल-८ दिशा-अवान्तर दिशा। अष्टमूर्त्ति शिव, अष्टापदी वाक्-

वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृत स्पृशम्। (ऋक्. ८/७६/१२)

गौरीर्मिमाय ...अष्टापदी नवपदी बभूवुषी। (ऋक्.१/१६४/४१)

(५) भूपुर-इसमें ८ दिशा में ८ दिक्पाल, ८ मातृका हैं। ४ द्वार तथा ४ रेखाओं और ३ रंग की पट्टियों से बनता है। तीन वर्ण-रक्त-शुक्ल-कृष्ण तीन गुणों के प्रतीक हैं-

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां...।(श्वेताश्वतर उप.४/५)

गायत्री त्रिपदा षट् कुक्षिः पञ्च शीर्षी। (तार उप.१५)

गायत्री रहस्योपनिषद् मे भी इनका वर्णन है। २४ अक्षर सांख्य दर्शन के २४ तत्त्व हैं, २५वां तत्त्व पुरुष (ब्रह्म) है। इनके २४ ऋषि, २४ शक्ति भी वर्णित हैं।

१७. गणपति-कार्त्तिकेय- कणों का समूह गण है-इस रूप में विश्व का दर्शन गणेश है। उसका परम कारण रूप प्रवर्ग्य है, जो भाग सृष्टि कार्य में लगा, वह ब्रह्मौदन है। प्रवर्ग्य ही अथर्व (१९/७) में उच्छिष्ट कहा गया है-इसी को ईशावास्योपनिषद् में-तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा:-कहा गया है । ब्राह्मण ग्रन्थों में महावीर-कर्म्म, छिन्नशीर्ष याग आदि होते हैं। उच्छिष्ट भाग ३ पाद तथा सृष्ट विश्व १ पाद है-पादोऽस्य विश्व भूतानि त्रिपादस्यामृतम् दिवि। (पुरुष-सूक्त-३)। गायत्री का प्रथम पद वह मूल स्रष्टा उच्छिष्ट-गणपति है। इसके बिना कोई सृष्टि नहीं होती-

निषुसीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किंचनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च।(ऋक्१०/११२/९)

गणेश का भर्ग-रूप सृष्ट जगत् में कई स्तर का है। इन्हें मरुत् रूप में रुद्र का पुत्र कहा गया है। (ऋक् ८/२०)-

विद्मा हि रुद्रियाणां ...(३) यथा रुद्रस्य सूनवो ...(१७)

दृश्य जगत् में मरुत् ही गणेश हैं-गणेशो हि मरुत:। (ताण्ड्य महा ब्रा.१९/१४/२)

मरुतो गणानां पतय:। (तैत्तिरीय ब्रा. ३/११/४/२)

आकाश-गङ्गा या परमेष्ठी के रूप में ये पशु (सृष्टि), अन्न (सौर मण्डल का निर्माता), प्राण, इन्द्र का विश (प्रजा), देवताओं से बड़े (भूयिष्ठ), ७-७ मरुत् खण्ड आदि हैं-

सप्त-सप्त हि मारुता गणा:। (वा.यजु. १७/८०-८५,३९/७)-शतपथ ब्रा.(९/३/१/२५)

मरुतो वै देवानां भूयिष्ठा: ।(ताण्ड्य महा ब्रा.१४/१२/९,२१/१४/३; तैत्तिरीय ब्रा.२/७/१०/१)

मरुतो वै देवानां विश:। (ऐतरेय ब्रा.१/९, ताण्ड्य.६/१०/१०, १८/१/१४)

अन्नं वै मरुत:। (तैत्तिरीय ब्रा.१/७/३/५,१/७/५/२,१/७/७/३)

पशवो वै मरुत: ।(ऐतरेय ब्रा.३/१९); प्राणा वै मारुता: ।(शतपथ ब्रा.९/३/१/७) इन्द्रस्य वै मरुत:। (कौषीतकि ब्रा.५/४)

यह परमेष्ठी मण्डल के देवता हैं-अथैनं (इन्द्रस्य) ऊर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवा: ...अभ्यषिञ्चन् ... पारमेष्ठ्याय महा राज्यायाऽऽधिपत्याय स्वा वश्यायाऽऽतिष्ठाय। (ऐतरेय ब्रा.८/१४)

परमेष्ठी का आकार ४९ अहर्गण (पृथ्वी का ४६ बार २ गुणा) है। उसके बाद महावीर है। अत: परमेष्ठी का मरुत् विभाग गणपति तथा उसके बाहर स्वयम्भू मण्डल महा-गणपति है। इन सभी रचनाओं का आधार तत्त्व गणपति है। सौर वायु तथा धरा-धरित्री-धरणी रूप में पृथ्वी गणपति है। उस घन रूप की प्रतिष्ठा मूषक है, जो पृथ्वी के भीतर रहता है। इस घन प्राण की प्राप्ति के लिये चूहे के बिल की मिट्टी (आखुकरीष) का संग्रह होता है-

अथ आखुकरीषं सम्भरति। आखवो (मूषका:) ह वा अस्यै पृथिव्यै रसं (घनाग्नि रसं) विदु:। (शतपथ ब्रा.२/१/७)

आध्यात्मिक रूप में मूलाधार के स्थान में मूल ग्रन्थि रूप में गणेश है।

गणेश कण-समूह रूप में ब्रह्म हैं, तो अन्य रुद्र-पुत्र कार्त्तिकेय सुब्रह्म हैं। ब्रह्म अलग-अलग रूप हैं, उनका स्वेद (= सुवेद या सुब्रह्म) द्वारा मिलन कार्त्तिकेय है-

वाग्वै ब्रह्म च सुब्रह्म चेति। (ऐत.ब्रा.६/३)।

ब्रह्मश्री वैं नामैतत्साम यत्सुब्रह्मण्या। (षड्विंश ब्रा.१/२)

ॐ ब्रह्म ह वा इदमग्र आसीत्।... महद्वै यक्षं तदेकमेवास्मि, द्वितीयं देवं निर्मम... सन्तप्तस्य ललाटे स्नेहो अजायत .. यक्षं सुवेदम्-अविदामह ।...एतं सुवेदं सन्तं स्वेद इत्याचक्षते।(गोपथ पू.१/१)

अलग-अलग कण ब्रह्म हैं, उनको मिला कर एक रूप की कल्पना सुब्रह्मण्य है। सुब्रह्मण्य लिपि तमिल में स्पर्श वर्ग के प्रथम ४ वर्ण एक रूप हैं, जैसे क से घ तक। सभी रचनायें कणों का समूह हैं-मनुष्य कोषिकाओं का समूह है, पर उसे मिलाकर हम एक ही रूप में देखते है। घर, गाड़ी आदि सभी अणुओं के समूह हैं, पर उनका विचार मिलित रूप में ही है। ६ प्रकार के विश्वों का मिलन कार्त्तिकेय हैं-षाण्मातुर: (अमरकोष

१/१), तमिल में षण्मुखम्, अरुमुगम् आदि। मनुष्य शरीर में ६ चक्रों का भेदन कार्त्तिकेय है।

१८. वेद-माता-वेद-माता नाम का सूक्त अथर्व (१९/७१) है-

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयु: प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।

महर्षि दैवरात ने वाङ्माता रूप में ऋक् (१०/११४/४) को माना है-

एक: सुपर्ण: स समुद्रमाविवेश, स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं, माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥

माता शब्द मा धातु (माङ् माने, शब्दे च- पा.धातु.२/५५, ३/६, ४/३३) से बना है। शब्द आकाश का गुण है-उसी से सभी की उत्पत्ति है। उसके माया द्वारा खण्ड होने पर इनसे माप होती है। माप-पात्र से द्रव की माप है, माता के शरीर से भी पुत्र निकलता है, माप करने वाली भी माता है। माप के आवरण से बाहर का रूप नहीं दीखता-अत: माया का अर्थ भ्रम भी है। गायत्री इन रूपों में वेदमाता है-लोकों की माप, सांख्य के २५ तत्त्वों के रूप में जगत्, विश्व के खण्डों के रूप मे । अथर्व सूक्त में मही से ब्रह्म लोक तक की माप, आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्त्ति, द्रविण अर्थों मे उल्लेख है। ऋक् सूक्त के साथ देखने से द्रविण (द्रविड़) क्षेत्र में सुपर्ण ने समुद्र में प्रवेश किया तथा उस क्षेत्र का माता के समान पालन किया। नौ सेना-प्रमुख को सुपर्ण (सुवन्ना) नायक कहा जाता था, भूमि-पालक (रेळ्हि) को आन्ध्र-प्रदेश में रेड्डि तथा महाराष्ट्र में रेलि या रेले कहा जाता है। सुपर्ण ने जहां समुद्र में प्रवेश किया, उसे (सु-)ताम्रपर्णी (रामेश्वरम्) तथा उसके निकट का समुद्र पाक (पाकेन मनसा अपश्यम्) कहा जाता है। ओड़िशा में पाक शब्द का व्यापक रूप में व्यवहार होता है, पकाना का अर्थ भोजन पकाना हर जगह है । किन्तु भोजन में कोई सामग्री डालना भी पकाना कहते हैं । सुपर्ण के समुद्र-रूप मयूर द्वारा कार्त्तिकेय ने प्रशान्त महासागर पर अधिकार किया था, वहां के सभी द्वीपों के निवासी तथा भाषा माओरी है। सुब्रह्मण्य-लिपि तमिल समुद्र (सुवेद-क्षेत्र) के लिये थी, अत: इसका प्रचार अमेरिका में था। कर्णाटक के माण्ड्या

जिले के डॉ. वेणुगोपालाचार्य ने इसे कन्नड़ मूल का प्रमाणित किया है (World-wide Hindu Culture and Vaishnava Bhakti)।

सम्पूर्ण विश्व ही वेद कहा गया है-५ पर्वों के अलग-अलग रूप वेद-पुरुष हैं। उनका शब्द रूप देवी है-

शब्दात्मिकां सुविमलर्ग्यजुषां निधानमुद्गीथ रम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
(दुर्गासप्तशती, ४/१०)

दोनों प्रकार के वेदों का निर्माण स्थल गायत्री है-

(१) आकाश में लोकों की माप गायत्री छन्द द्वारा है। मनुष्य से आरम्भ कर सभी बड़े लोक क्रमश: १ कोटि गुणा बड़े हैं-पृथ्वी, सौर-मण्डल की पृथ्वी (मैत्रेय मण्डल),परमेष्ठी या आकाश-गङ्गा, स्वयम्भू या पूर्ण जगत्। १ कोटि गुणा का अर्थ २४ बार २ गुणा करना है, अत: २४ अक्षर का गायत्री छन्द लोकों की माप है। इन्हीं में सृष्टि हुयी है, अत: लोक रूपी वेदों की माता गायत्री है।

(२) शब्द रूपी वेद स्वयं देवी या गायत्री स्वरूप हैं। शब्दों का उच्चारण ८ भागों में है, अक्षर में अधिकतम ८ वर्ण हो सकते है । अर्थ अनुसार प्राय: ८ अक्षर के छन्द हैं, ३पाद के गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं। प्राय: ४ पाद में ३२ अक्षर के अनुष्टुप् छन्दों का अधिक प्रयोग है ।

(३) गायत्री के २४ अक्षर (छन्द या मन्त्र में) सांख्य दर्शन के २४ तत्त्व हैं, जिनसे विश्व का निर्माण हुआ है। इस अर्थ में संसार को भू कहा गया है- भ २४ वां अक्षर तथा २४ संख्या का बोधक है। सीमा के भीतर का विश्व भूमि है । उसका प्रभाव-क्षेत्र या साम भूमा है। पुरुष सूक्त में भूमि का अर्थ विश्व है-

स भूमिं विश्वतो वृत्त्वाऽत्यत्तिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।

ज्योतिष में भ का अर्थ नक्षत्र है, जो २७ हैं, पर नाम के अनुसार २४ ही हैं। ३ नक्षत्रों के पूर्व तथा उत्तर २-२ भाग हैं।

(४) गायत्री के पादाक्षर संख्या ८ के अनुसार कई प्रकार की रचनायें भी ८-८ हैं, जिनके ८ प्रकार प्रथम अध्याय में दिखाये गये हैं।

अध्याय ३

सृष्टि तथा गायत्री

१. शून्य से आरम्भ-सृष्टि का आरम्भ शून्य से हुआ। यह व्यक्त नहीं था, अतः इसे असत् कहा गया है। किन्तु इसमें निर्माण के लिये सभी सामग्री थी, अतः इसे सत् भी कहा जा सकता है। यही नासदीय सूक्त में भी कहा गया है-

ना सदासीन्नो सदासीत् नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।१।

(सृष्टि के आरम्भ में) न सत् था, न असत्, उस समय न लोक (रज)था, न व्योम से परे कुछ था। उस समय सबका आवरण क्या था, कहां किसका अश्रय (शर्मन् =चमड़ा, खोल) था ? अगाध और गम्भीर जल क्या था?

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
अनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ।२।

उस समय न मृत्यु थी, न अमृत था. रात्रि तथा दिन स्पष्ट (प्रकेत) नहीं थे (सूर्य के अभाव में)। वायु के अभाव में एकमात्र ब्रह्म अपनी शक्ति से स्वयं श्वास ले रहा था। उससे परे या भिन्न कोई वस्तु नहीं थी। २।

तम आसीत् तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्व मा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत् तपसस्तन्महिना जायतैकम् ।३।

पहले तम (अन्धकार) था, वह और गूढ़ अन्धकार से ढंका था। अस्पष्ट (अप्रकेत) दशा में चारों तरफ सलिल था। जो कुछ (आभू) था, वह तुच्छ्य से घिरा था। वह सभी एक ब्रह्म के तप की महिमा से था ।३।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ।४।

सबसे पहले ब्रह्म ने सृष्टि की इच्छा (काम) की। उस मन से पहले बीज या विन्दु (रेत) हुआ। तब कवियों ने बुद्धि को हृदय में केन्द्रित कर असत् (अव्यक्त या अस्पष्ट ब्रह्म) से बन्ध द्वारा सत् का निर्माण किया।४।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरिस्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः परस्तात् ।५।

इन रेत कणों से तिरछी किरणें नीचे तथा ऊपर सभी दिशाओं में फैलीं। रेत धारण करने वाले (पिण्ड या अधिपुरुष) की महिमा (साम या प्रभाव) था। उससे उसने स्वयं को धारण किया (स्वधा) तथा अन्यों तक प्रभाव फैलाया। ५।

को अद्धा वेद इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना ऽथा को वेद यत आबभूव ।६।

इसे कौन जान सकता है या इसका व्याख्या कर सकता है कि यह विसृष्टि (सृष्टि के विविध रूप) कहां से आयी तथा कैसे विविध रूपी हुयी। देवता भी इस सृष्टि के बाद ही पैदा हुये हैं, अतः यह कहां से उत्पन्न हुयी यह कौन जानता है?

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ।७।

यह विसृष्टि जिससे पैदा हुयी वह इसे धारण करता है या नहीं। जो इसका अध्यक्ष परम व्योम में है वह भी इन अङ्गों को जानता है या नहीं।७।

(ऋग्वेद १०/१२९/१-७, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/८/९/३, शतपथ ब्राह्मण १०/५/३/२)

२. सृष्टि के विविध विचार-इस सूक्त में १० प्रकार के वैकल्पिक विचार हैं जिनसे सृष्टि हुयी। इसके आधार पर पण्डित मधुसूदन ओझा ने दशवाद रहस्य लिखा तथा अलग-अलग वादों पर स्वतन्त्र पुस्तकें भी लिखीं। ब्रह्मा के पूर्व साध्य युग में ये १० वाद प्रचलित थे जिसका उल्लेख पुरुष सूक्त के अन्तिम श्लोक में किया गया है-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।

(पुरुष सूक्त १६, ऋग् वेद १०/९०/१६, वाजसनेयी संहिता १/१६)विज्ञान की पृष्ठभूमि रूप में इतिवृत्तवाद (सृष्टि का वास्तविक क्रम) तथा निष्कर्ष रूप में सिद्धान्त वाद मिलाकर अहोरात्रवाद ग्रन्थ के अन्त में १२ वादों की गणना की है-

इतिवृत्तं सदसद् वा रजो वियद् वापरं तथावरणम्।
अम्भोऽमृतमृत्यू वाऽहोरात्रो दैवसंशयो ब्रह्म।।
एते द्वादश वादाः शास्त्रेऽस्मिन् ब्रह्मविज्ञाने।

१. इतिवृत्तवाद, २. सदसद्वाद, ३. रजोवाद, ४. व्योमवाद, ५. अपरवाद, ६. आवरणवाद, ७. अम्भोवाद, ८. अमृत-मृत्युवाद, ९. अहोरात्रवाद, १०. दैववाद, ११. संशयवाद, १२. सिद्धान्तवाद।

पं. मोतीलाल शास्त्री, वासुदेव शरण अग्रवाल, पं. गिरिधर शर्मा आदि के सारांशों के अनुसार १० वादों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

१. सदसद्वाद-सत् का अर्थ है दीखनेवाला या अनुभव होने लामक। अनुभव सीमा के परे असत् है-अति सूक्ष्म, निराकार, अतिदूर, प्रकाश हीन आदि। अथर्ववेद के स्कम्भ-सूक्त (१०/७/२१-२५) में इनको सत् और असत् शाखा कहा गया है। शतपथ ब्रा.(६/१/१/१) के अनुसार सृष्टि का मूल ऋषि असत् प्राण है।

तैत्तिरीय उप.(२/७/१) में भी-असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो सदजायत। मनुस्मृति(३/२०१) में असत् ऋषि से सृष्टि क्रम है-

ऋषिभ्यः पितरो जाताः पितृभ्यो देवदानवाः। देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थण्वनुपूर्वशः।।

यही मत ऋक् (१/९/५) में है-असदित्ते विभु प्रभुः। ऐसा मत ऋक् (९/८/८६, १०/७२/३) तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण (२/२/९) में भी है। एक अन्य विचार है कि सत् की उत्पत्ति असत् से नहीं हो सकती, मूल भी सत् होना चाहिये-यो नः पिता यो जनिता विधाता, यो नः सतो अभ्या सज्जजान (तैत्तिरीय सं.४/६/२/३)।

ऋक् (१/९६/७, ८/१०१/११,९/३१/६,९/८६/५,१०/५३/१), तैत्तिरीय उप.(२/६) भी सृष्टि में परिवर्तन और स्थिरता दोनों दीखते हैं, अतः सत्-असत् युग्म मूल है-सतश्च योनिमसतश्च विश्वः (वा.यजु. १३/३)।

शतपथ ब्राह्मण (१०/४/१) में भी।

सदसद्वाद ग्रन्थ की भूमिका में पं. मधुसूदन ओझा ने इन ३ वादों के ७ प्रकार के विमर्शो द्वारा २१ भेद बताये हैं, जो सभी दर्शनों का मूल है-

विमर्श	सत्/असत्/सदसत्-वाद	मत
१. प्रत्यय	नित्यविज्ञानाद्वैत	ब्राह्मण
	क्षणिकविज्ञानाद्वैत	श्रमणक
	आनन्दविज्ञानाद्वैत	वैज्ञानिक
२. प्रकृति	कर्म्माद्वैत	वैनाशिक
	ब्रह्माद्वैत	अविनाशिक
	द्वैताद्वैत	वैनाशिकवादविनाशि
३. तादात्म्य	भिन्नाभिन्नत्व	धर्म्माधर्म्मी रस-बल का अभेद
	बलसारत्व	बल की प्रधानता
	रससारत्व	रसप्राधान्य
४. अभिकार्य	असत्कार्यवाद	वैशेषिक
	सत्कार्यवाद	प्राधानिक
	मिथ्याकार्यवाद	शारीरक
५. गुण	असन्मूलासृष्टि	प्राणमूलकसृष्टि
	सन्मूलासृष्टि	वाड्मूलकसृष्टि
	सदसदैकात्म्यमूलासृष्टि	मनोमूलकसृष्टि
६. सामञ्जस्य	प्रागभावसमुच्चितकारणवाद	अभावपूर्वकभावोत्पत्ति
	सम्भूतिविनाशवाद	उत्पत्तिविनाशप्रवाह
	विद्या-अविद्यावाद	सर्वजगदभावात्मकभावमूलकसृष्टि
७.अक्षर	सौगत	सृष्टिबीजस्याक्षरस्याव्यक्त बलरूपत्व
	कपिल	सृष्टिबीजस्याक्षरस्य जड़प्रधानरूपत्व
	बादरायण	सृष्टिबीजस्याक्षरस्य चेतनपुरुषरूपत्व

२. रजोवाद-रज का अर्थ धूलि कण, गति, धन आदि है। सभी लोक(अकाशगंगा, तारा, या ग्रह) धूलि कणों के समान आकाश में विचरण कर रहे हैं, अतः उन्हें भी रज कहा गया है-रजांसि वै लोकाः (वा.यजु. ११/६, शतपथ ब्रा. ६/३/१/१८)। गति द्वारा ही संसार की रचना हुयी है। प्रकृति के ३ गुणों में सत्व ज्ञान है, तमोगुण जड़ है, केवल क्रियाशील रजोगुण द्वारा ही सृष्टि हो सकती है। रजोवाद के समर्थक वाक्य-यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना (ऋक्.५/८१/३)। तीन धातु-अर्कस्त्रिधातु रजसो विमानः(ऋक्.३/२६/७)

वि वर्तेते रजसी (ऋक्.६/९/१)। अन्य हैं-ऋक्(१/१६४/६,१४; १/३५/२,९; १०/३२/२), शतपथ ब्रा.(६/३/१८)।

३. व्योमवाद-सूक्ष्म आकाश ही सृष्टि का मूल है। व्योम का अर्थ ज्योतिष में शून्य होता है। परम व्योम सृष्टि का मूल रूप या अक्षर है-ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् (ऋक्.१/१६४/३९)। इसके सहस्र रूप बनते हैं-सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋक्.१/१६४/४१)। यह आधार है-भगो न मेने परमे व्योमन्न आधारयद्रोदसी सुदंसाः (ऋक्. १/६२/७)। अन्य-ऋक्(१/१४३/२; १०/१२९/७; ६/८/२)

४. अपरवाद-पर का अर्थ है आत्मा, और अपर प्रकृति है। इन दोनों से उत्पन्न होने के कारण इसे पर-अपर वाद भी कहते हैं। भौतिक जगत् प्राकृतिक है, अतः इसका उद्गम भी प्रकृति से ही है। प्रकृति को स्वभाव, नियति (परिणाम वाद), यदृच्छा (आकस्मिक) भी कहते हैं। प्रकृति के महान्, अहंकार आदि रूपों से सृष्टि का वर्णन सांख्य का विषय है। अस्य-वामीय सूक्त (ऋक्.१/१६४/१७-१९) में पर-अपर द्वारा सृष्टि का वर्णन है। अन्य-कृणोति पूर्व परं शचीभिः(ऋक्.६/४७/१५)। कार्य-कारण का अभेद शतपथ ब्रा.(६/१/२/२७) में समझाया है-उभयं हैतद्भवति-पिता च पुत्रश्च। प्रजापतिश्चाग्निश्च, अग्निश्च प्रजापतिश्च, प्रजापतिश्च देवाश्च, देवाश्च प्रजापतिश्च। अन्य-ऋक्.(१०/१८/५),(८/२७/१४) आदि।

५. आवरणवाद-आवरण का अर्थ है पदार्थ का बाह्य रूप। आवरण को वयुन कहा गया है। विभिन्न तत्त्वों के परस्पर मिलन को वयन (वस्त्र बुनना) कहते हैं-वयांसि तद् व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवास:-भागवत पुराण (२/१/३६)
वयुन या आवरण छन्द है-यह देश-काल की माप है; इसे अध्याय २ में समझाया गया है। आवरण से ढंका पदार्थ वयोनाध है, तथा उसे बान्धने वाला प्राण वय है (शतपथ ब्रा. ८/२/२/८)। अत: वय का अर्थ आयु भी है। आवरण या छन्द माया है-इससे भीतरी पदार्थ छिप जाता है, अत: माया का अर्थ भ्रम है। माया से सृष्टि होने से मह माता है। आवरण को चर्म या शर्म (शतपथ.३/२/१/८) भी कहा गया है। माया रूपी तम से सृष्टि-तम असीत्तमसागूळ्हमग्रे (ऋक् १०/१२९/३)
अन्य-ऋक्-(१/१४३/६;१/५५/८;२/८७/४;९/७४/२), मनुस्मृति (१/२१)-
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वत:।

६. अम्भोवाद-सृष्टि का मूल पदार्थ समरूप होने से रस (तैत्तिरीय उप.२/७/२) या अप् कहा गया है। इसमें कम्पन होने से यह अम्भ है, उसमें लहर आने से सलिल, उत्पन्न पदार्थ द्रप्स (drops) या बुलबुला है। मूल से निकलने के कारण यह स्कन्द या च्युत है। अप् का विस्तार समुद्र है, जिसके रूप नभस्वान्, सरस्वान्, अर्णव तथा उनका आदित्य (आदि करनेवाला) प्राण अर्यमा, वरुण, मित्र तीन धामों-स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर मण्डल-में हैं। समुद्र जैसा विस्तार माता का गर्भ है, उसमें निर्माण का केन्द्र पिता है।
आपो हिष्ठा मयो भुव:(ऋक्. १०/९/१, वा. यजु.११/५०, ३६/१४),
प्र सु व आपो महिमानमुत्तमम् (ऋक्.१०/७५/१)।
अन्य-ऋक्.६/५०/७; १/१००/१; शतपथ ११/१/६/१; १/१/१/१४; ६/१/१/८; १०/५/४/१५; १०/५/४/१४; ४/५/२/१४।

७. अमृत-मृत्युवाद-रस रूप स्थायी या अमृत है; उससे उत्पन्न सृष्टि क्षणिक या मृत्यु है। अमृत रस के समुद्र से मुक्त होने से यह मुच्यु है, जिसे परोक्ष में मृत्यु कहा गया है (गोपथ ब्रा.पू. १/७)। सभी सृष्ट पदार्थ क्षर या मृत्यु तथा मूल स्रोत अमृत है-पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि (पुरुष सूक्त ३)। सत् भाव या मृत्यु है; असत् अभाव किन्तु अमृत है। दोनों साथ-साथ रहते हैं-अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतामहितम्(शतपथ १०/५/२/४)। निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च (वा.यजु. ३४/३१)। अन्य-ऋक् १/८३/५; ३/१/१४; शत.(१०/१/४/१)

८. अहोरात्रवाद-मूल अव्यक्त से व्मक्त की सृष्टि ब्रह्मा का दिन तथा उसका पुन: अव्यक्त में लीन होना रात्रि है-अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वे प्रभवन्त्यहरागमे। रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके (गीता, ८/१८)। विभिन्न प्रकार के निर्माण चक्र ही काल की माप हैं। अथर्व सं.(१९/५३,५४) के दो सूक्तों में काल का विस्तार से वर्णन है। निर्माण क्रिया को सम्भूति, सञ्चर तथा लय को असम्भूति, प्रतिसञ्चर आदि भी कहते हैं। इनका चक्र दर्श-पूर्णमास यज्ञ है-दर्श (अमावास्या) से पूर्णिमा तक चन्द्र के प्रकाशित भाग का विस्तार निर्माण तथा विपरीत क्रम लय है। यज्ञ में अग्नि (सीमा में घनीभूत) तथा सोम (विकीर्ण पदार्थ) का मिलन होता है। अग्नि में विस्तार की प्रवृत्ति अंगिरा तथा सोम के संकोच की प्रवृत्ति भृगु है।

९. देववाद-प्राण शक्ति के स्तर देवता हैं, उनका अव्यक्त अनियमित विस्तार असुर है। प्राण का घनीभूत केन्द्र सूर्य है-उसके साम मा प्रभाव-क्षेत्र में उर्जा के ३३ स्तर ३३ देवता हैं (अध्याय २)। प्रति देव-क्षेत्र में ३ प्रकार के असुर हैं-बल, नमुचि, वृत्र-अर्थात् ९९ असुर। देवों से सृष्टि होती है, असुरों से नहीं। अत: सृष्ट विश्व ४ पाद में १ पाद है-
ऋषिभ्य: पितरो जाता: पितृभ्यो देव-दानवा:।
देवेभ्यश्च जगत्सर्वं चरं स्थाण्वनुपूर्वश:।(मनुस्मृति ३/२०१)
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि (पुरुष सूक्त, ३)

१०. संशयवाद-कई प्रकार के वर्णनों के कारण संसार के वास्तविक रूप के बारे में सन्देह रहता है। इसका निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि उस समय देव भी उत्पन्न नहीं हुये थे । (नासदीम सूक्त ६,७) तर्क की सीमा के पार जाने के कारण भी संशय रहता है-अचिन्त्या: खलु ये भावा न ताँस्तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्य: परं यस्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्।(महाभारत भीष्म.५/१२, वायु पुराण)
इनके अतिरिक्त आधार रूप (विज्ञान-) इतिवृत्तवाद के अनुसार विज्ञान द्वारा ही विश्व के निर्माण का क्रम निर्धारित होता है। मनुष्य भी यज्ञ-विज्ञान द्वारा कुछ भी बना सकता है। विश्वामित्र द्वारा ब्रह्मा से स्वतन्त्र सृष्टि का वर्णन पुराणों में आता है। अहं ता विश्वं चकारम् (ऋक् ४/४२/६) अन्य-ऋक् १०/४९/१,९; १०/४८/१,४; १०/१९/२; १०/१८४/३; ४/२६/१ आदि हैं।

इन सभी सिद्धान्तों का समन्वय ब्रह्म-सिद्धान्त में है। इस का विस्तार से पं. मधुसूदन ओझा ने ब्रह्म-सिद्धान्त में वर्णन किया है, जिसकी पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी द्वारा संस्कृत व्याख्या हुयी तथा उसका हिन्दी अनुवाद उनके पुत्र देवीदत्त चतुर्वेदी ने किया है (राजस्थान पत्रिका प्रकाशन)। इसके अनुसार ब्रह्म ही विश्व का मूल स्रोत, आधार,

उपकरण, निर्माता सब कुछ है। उसके ६ स्तर के विवर्त्त माया द्वारा होते हैं। उसके ४ पाद है-परात्पर, अव्यय, अक्षर, क्षर।

३. शून्य या विन्दु के स्तर-विन्दु शब्द के दो रूप हैं-(१) बिन्दु-बिदि अवयवे-सबसे छोटे अवयव या खण्ड के रूप में बिन्दु आकार है-

जलबिन्दु प्रपातेन क्रमशः पूर्यते घटः ।
स हेतुः सर्वशास्त्रस्य धर्मस्य च धनस्य च। (पञ्चतन्त्र)
विस्तीर्यते यशोलोकं तैलबिन्दुमिवाम्भसि (मनुस्मृति ७/३३)

शून्य अर्थ-न रोमकामौघमिषाज्जग्कृता,
कृताश्च किं दूषण शून्य बिन्दवः (नैषध चरित ९/२१)

(२) विन्दु-ज्ञान केन्द्र के रूप में अर्थ-विद् ज्ञाने + विन्दुरिच्छुः इति उ प्रत्ययः, नुम् का आगमन निपात से।

(३) विन्दु का साकार रूप इन्दु या चन्द्र है । इन्दु-उनत्ति क्लेदयति चन्द्रिकया भुवनम् (उन्द् + उ = आदेरिच्च)-जो अपनी चन्द्रिका से संसार को आप्यायित करता है, वह इन्दु है। इसी व्युत्पत्ति से निघण्टु (१/१२) में इन्दु का अर्थ जल तथा (३/१७) में यज्ञ है।

शिव संहिता के अनुसार विन्दु, नाद तथा बीज की उत्पत्ति का क्रम है-

बिन्दुः शिवात्मको बीजं शक्तिर्नादस्तयोर्मितः।
समवायः समाख्यातः सर्वागम विशारदैः।।
सच्चिदानन्दविभवात् सङ्कल्पात्परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्वतो नादो नादाद्विन्दु समुद्भवः।।
पर शक्तिमयः साक्षात् त्रिधासौ भिद्यते पुनः।
बिन्दु नादो बीजमिति तस्य भेदाः समीरिताः।।
रौद्री बिन्दोस्ततो नादाज्ज्येष्ठा बीजादजायत।
वामा ताभ्यः समुत्पन्नाः रुद्र-ब्रह्मा-रमाधिपाः।।
इच्छा क्रिया तथा ज्ञानं गौरी ब्राह्मी तु वैष्णवी।।
त्रिधा शक्तिः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति।।

योगशिखोपनिषद् (६/७०) में-

बिन्दु नाद कला ब्रह्मन् विष्णु महेश देवताः।।

अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।।(दुर्गा सप्तशती १/७४)

बाबाजी श्री शेषानन दास, अभिराम परमहंस आश्रम, भुवनेश्वर द्वारा प्रचीन तेलुगू परम्परा के अनुसार-अनाक्षर शब्द-

विन्दु कृष्ण स्वयं रूपं अर्द्धविन्दु स्वधर्मिणी। एक चतुर्थांश रूपं लिख्यते तं सन्निधानम्।
हिरण्यगर्भ वदनामं निम्नभागेन वर्णितम्। एकारद्वयमपसव्यं दक्षभागेन उद्दीपम्।
शिरोदेशे विन्दु संयुक्तम्-इदं अनाक्षर स्वरूपम्।

हरादि एकाक्षर शब्द-

प्रथमं अर्धविन्दुश्चैव तृतीयार्धं तन्निम्न स्थाप्यम्।
भूसुर ज्येष्ठ वदनामं निम्नभागेन स्थापितम्।
एकारद्वयमपसव्यं दक्षिण दिशेन वर्तितम्। शिरो देशे विन्दु संयुक्तं इदं हरादि एकाक्षरम्।
ॐ कार-प्रथमं तारकं चैव द्वितीयं दण्डमुच्यते। तृतीयं कुण्डलाकारं चतुर्थं अर्धचन्द्रिकम्।
पञ्चमं विन्दु संयुक्तं पञ्चाङ्ग प्रणव लक्षणम्।

मूल शब्द ॐ था जिसके ४ अवयव माण्डूक्य उपनिषद् में कहे गये है।

ॐ
अ उ म अर्द्ध-मात्रा

अर्द्ध मात्रा को प्रायः विन्दु कहा जाता है, किन्तु यह नाद है तथा उसे ९ विन्दु का योग कहा गया है। इनका मूल महा-विन्दु है जो कल्पना से परे है-(१) विन्दु, (२) अर्द्ध-चन्द्र, (३) रोधिनी, (४) नाद, (५) नादान्त, (६) शक्ति, (७) व्यापिका, (८) समना, (९) उन्मनी, (१०) महाविन्दु।

विन्दु अर्द्धमात्रा है। उसके ८ स्तरों में अनुनासिक ध्वनि की मात्रा क्रमशः आधी हो जाती है, विन्दु का १/२ से उन्मनी की १/५१२ मात्रा। एक मत से ८ स्तरों के बाद भी १/५१२ मात्रा बची रह जाती है, जिसे शिवपुराण, उमा संहिता, अध्याय २३ में तुङ्कार कहा गया है। यह ८ प्रकार के अनाहत नाद के बाद की स्थिति है। अन्तिम मूल महाविन्दु अव्यक्त है। इसके अनुरूप अज्ञा चक्र के ऊपर ८ स्तर हैं। इसी के अनुसार शिव, शक्ति तथा श्री-चक्र के ८-८ व्यूह हैं।

शिव-काल, कुल, नाम, ज्ञान, चित्र, नाद, बिन्दु, कला, जीव।
शक्ति-वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका, इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ति, परा।
श्री चक्र-५ श्रीकण्ठ (शिव) तथा ५ शिवयुवतियाँ (शक्ति)==८ मूल त्रिकोण।
आज्ञा तथा सहस्रार के बीच के स्तर-

बिन्दु, अर्द्धचन्द्र, रोधिनी, नाद, नादान्त, व्यापिनी, समना, उन्मनी। आज्ञा के ऊर त्रिकूट मिलाकर ९ चक्र होते हैं।

विन्दु से सृष्टि का क्रम-

विन्दु (शिव) + बीज (शक्ति) —— नाद ——

नादस्पन्द —— विन्दु (स्पन्द का केन्द्र)

विन्दु बीज नाद

शिव (पर विन्दु)

शक्ति

सदाख्य शिव (नाद)

ईश्वर (विन्दु)

शुद्ध विद्या (विन्दु)
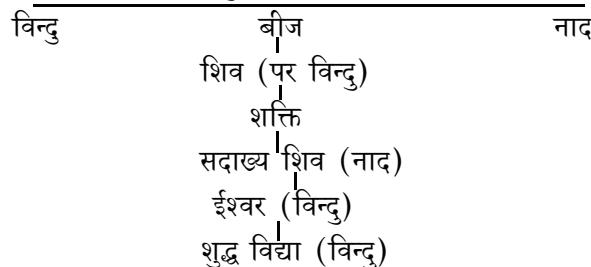
नाद ज्येष्ठा	बीज -वामा	बिन्दु -रौद्री
ब्रह्मा-इच्छा	विष्णु -क्रिया	रुद्र-ज्ञान
ब्राह्मी-क्रिया	वैष्णवी-ज्ञान	गौरी-इच्छा
सूर्य- प्राण	अग्नि -चिति	चन्द्र-मन

हृल्लेखा के उच्चारण होने पर आनुनासिक ध्वनि इन ९ स्तरों से होती हुयी उन्मनी में समाप्त हो जाती है।

बिन्द्वर्धचन्द्र रोधिन्यो नाद नादान्त शक्तयः। व्यापिका समनोन्मन्य इति द्वादशसंहतिः।।
बिन्द्वादीनां नवानां तु समष्टिर्नाद उच्यते। (वरिवस्या रहस्यम्)

आज्ञा चक्र के ऊपर के ९ स्तर-

सुषुम्नायै कुण्डलिन्यै सुधायै चन्द्रमण्डलात्।
मनोन्मन्यै नमस्तुभ्यं महाशक्त्यै चिदात्मने।।३।।
सुषुम्ना शाम्भवी शक्तिः शेषात्वेऽन्ये निरर्थकाः।
हृल्लेखे परमानन्दे तालुमूले व्यवस्थिते।।८।।
अत ऊर्ध्वं निरोधे तु मध्यमं मध्य मध्यमम्।
उच्चारयेत् परा शक्तिं ब्रह्मरन्ध्र निवासिनीम् ।।९।।
गमागमस्थं गमनादि शून्यं चिद् रूप दीपं तिमिरान्धनाशम् ।

पश्यामि तं सर्व जनान्तरस्थं नमामि हंसं परमात्मरूपम्।।२०।।
अनाहतस्यशब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः।
ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिषोऽन्तर्गतं मनः।।२१।।
यन्मनो विलयं यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।
तस्मात् सर्व प्रयत्नेन गुरुपादं समाश्रयेत्।।२२।।
आधार शक्ति निद्रायां विश्वं भवति निद्रया।
तस्यां शक्ति प्रबोधे तु त्रैलोक्यं प्रतिबुध्यते।।२३।।
ब्रह्मरन्ध्रे महास्थानं वर्तते सततं शिवा।
चिच्छक्तिः परमा देवी मध्यमे सुप्रतिष्ठिता।।४७।।
माया शक्तिर्ललाटाग्र भागे व्योमाम्बुजे तथा।
नादरूपा पराशक्तिर्ललाटस्य तु मध्यमे।।४८।।
भागे बिन्दुमयी शक्तिर्ललाटस्यापरांशके।
बिन्दुमध्ये च जीवात्मा सूक्ष्मरूपेण वर्त्तते।।४९।।
हृदये स्थूलरूपेण मध्यमेन तु मध्यमे। (योगशिखोपनिषद्, अध्याय ६)

शिव शक्ति के ९-९ खण्ड-

शरीरं त्वं शम्भोः शशिमिहिर वक्षोरुहयुगं, तवात्मानं मन्ये भगवति नवात्मानमनघम्।
अतः शेषः शेषीत्ययमुभयसाधारणतया, स्थितः सम्बन्धो वां समरस परमानन्द परयोः।।३४।।
चतुर्भि श्रीकण्ठैः शिवयुवतिभिः पञ्चभिरपि, प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूलप्रकृतिभिः।
त्रयश्चत्वारिंशद् वसुदल कलाश्र त्रिवलय, त्रिरेखाभिः सार्धं तव शरण कोणाः परिणताः।।११।।
(सौन्दर्य लहरी)

इनका विस्तृत वर्णन वरिवस्या-रहस्य (भास्करराय) या उनकी टीकाओं यथा चौखम्बा से प्रकाशित डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी की टीका देखें। ऋषिकेश के योगश्री पीठ से प्रकाशित स्वामी विष्णुतीर्थ का शिव-सूत्र, या योगेन्द्र विज्ञानी का महायोग-विज्ञान आदि पुस्तकें भी उपादेय हैं। यहाँ कुछ सारणियां दी जाती हैं।

नासदीय सूक्त (ऋग्वेद १।१०/१२९)-शैव दर्शन के तत्त्व-सृष्टि-क्रम (स्वामी विष्णुतीर्थ)

अक्षर परब्रह्म-ना सदासीन्नो सदासीत्तदानीं, नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्।
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि, न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।

तत्त्व कला उन्मेष सूक्त

शुद्ध तत्त्व

१. शिव } शान्त्यतीता प्रथम उन्मेष अनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनाऽऽस।२।
२. शक्ति } अध्यात्म भाव तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतम् सलिलं सर्व मा इदम्।
अधिभूत भाव

३. सदाशिव } द्वितीय उन्मेष
४. ईश्वर } शान्ति अहम्+इदम् विमर्श तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्, तपसस्तन्महिनाऽजायदेकम्।३।
५. शुद्ध विद्या } तृतीय उन्मेष-अहम् विमर्श कामस्तदग्रे समवर्तताधि,
इदम् विमर्श मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।

शुद्धाशुद्ध तत्त्व

६-माया] असत् सतो बन्धुमसति निरविन्दन्, हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।४।
७-काल | श्रीमद् भागवद्गीता तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरिस्विदासीत्।
८ कला | माया के | की परा प्रकृति रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः
९. नियति | ७ | विद्या परस्तात् ।५।
१०. विद्या | कञ्चुक | जीव भाव (शिवसूत्रोक्त शाम्भव-
११. राग | शाक्ताणव)तीन जीवोन्मेष
१२-पुरुष]

अशुद्ध तत्त्व (अपरा प्रकृति)

१३. अव्यक्त तीनों गुणों की साम्यावस्था | को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् कुत अजाता कुत इयं विसृष्टिः।
१४. महत् तीनों गुणों की विषमावस्था | अर्वानिना अस्य विसर्जनेनाथ को वेद यत आबभूव।६।
१५.-समष्टि अहङ्कार ;; त्रिगुणात्मक | इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
१६ समष्टि मन सात्त्विक अहङ्कार से | यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद।७।
१७ से २१-५ ज्ञानेन्द्रियां | राजस
२२ से २६-५ कर्मेन्द्रियां | अहङ्कार से प्रतिष्ठा कला
२७ से ३१-५ तन्मात्रा-शब्द, | तामस
स्पर्श, रूप, रस, गन्ध अहङ्कार
३२ से ३६-५ महाभूत-आकाश, से विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्व प्रकाशेन।
वायु, अग्नि, आपः विश्वसंहारेण वा अकृमोऽहमिति स्फुरणम्।।
३६. पृथिवी निवृत्ति कला
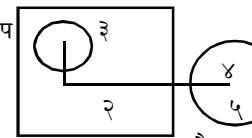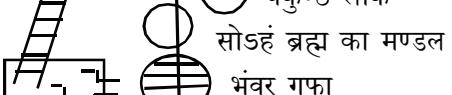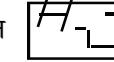
मूलाधार से आज्ञा चक्र तक

स्थान	चक्र
भ्रू मध्य के पीछे	आज्ञा चक्र, २ दल-हं, क्षं
कण्ठ कूप	विशुद्धि चक्र १६ दल कमल-अ, आ इ, ई, उ. ऊ. ऋ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः
हृदय के पीछे	अनाहत चक्र-१२ दल-क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ
नाभि के पीछे	मणिपूर चक्र-१० दल-ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ
मेरु-दण्ड का मूल	स्वाधिष्ठान चक्र -६ दल- ब, भ, म, य, र, ल
गुदा-मूत्र नली के बीच	मूलाधार चक्र-४ दल- व, श, ष, स
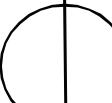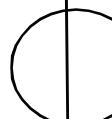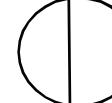
यह शब्दावली तथा विधि कबीर आदि साधकों द्वारा मध्ययुग में प्रयुक्त होती थी। यह सारणी स्वामी धनेश्वरानन्द तीर्थ की पुस्तक चक्र महाविज्ञान ग्रन्थ, गीता घाट आश्रम, सहसराम (बिहार), १९८७ के अनुसार है।

४. गायत्री तथा त्रिविध सृष्टि-सृष्टि के आरम्भ में पदार्थ नहीं था, केवल अव्यक्त तत्त्व था, जिसे तैत्तिरीय उपनिषद् में रस कहा गया है-

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो सदजायत।.. यद्वै तत्सुकृतं रसो वै सः। रसं ह्येवाय लब्ध्वाऽऽ आनन्दी भवति।(२/७/१) तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः।। (२/१/३)

विश्व का निर्माण सुकृत कहा गया है। इसे बाइबिल में कहा गया है कि भगवान ने हर सृष्टि के बाद कहा कि यह बहुत अच्छा हुआ। यह स्वयं को प्रमाण-पत्र नहीं देना था, पूर्ण (मूल पदार्थ) से पूर्ण विश्व का निर्माण सर्वहुत यज्ञ है, जिसे सुकृत कहा गया है।

पुरुष (चेतन तत्त्व) तथा प्रकृति (पदार्थ) द्वारा सृष्टि हुयी। इसका कारण प्रकृति के ३ गुण हैं। ३ गुणों के मिलन से $२^३$ = ८ प्रकृति-विकृति हुयी । प्रकृति= निर्माण करने वाला। विकृति= निर्माण। प्रकृति-विकृति निर्मित तथा निर्माण करने वाला-दोनों है। ८ प्रकृति के सत्त्व तथा रज गुणों के कारण ८+८ =१६ विकृति हुये। तम के कारण कोई नया निर्माण नहीं हुआ क्योंकि यह निष्क्रिय (तम = अन्धकार) है। अतः प्रकृति के २४ भेद तथा १ पुरुष मिलाकर २५ तत्त्व सांख्य दर्शन के हुये। गायत्री मन्त्र में ॐ पुरुष का तथा गायत्री के २४ अक्षर प्रकृति के २४ तत्त्व हैं। दोनों पुरुष के ही रूप हैं, समझने के लिये अलग-अलग विभाजन है-

प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु। (गीता ७/८)
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्। (गीता ९/१०)
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।(गीता ७/४)
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। (गीता ७/१३)
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। (गीता ३/२७)

ॐ में मूल विन्दु से ३ रूप -अ, उ, म-हुये। उनसे ३ लोक या धाम (स्वयम्भू =पूर्ण जगत्, परमेष्ठी = ब्रह्माण्ड या आकाशगङ्गा, सौर मण्डल) हुये। पुनः तीनों के ३-३ विभाजन हुये। बीच के २ लोक २ धामों में समान हैं, जो द्वितीय अध्याय में दिखाया गया है-अतः ७ लोक हैं।

भू, भुवः स्वः महः जनः तपः सत्य

भू, भुवः स्वः	महः जनः	तपः सत्य
सौर मण्डल	परमेष्ठी	स्वयम्भू

निर्मित लोक भू हैं, क्रिया रूप में इसका अर्थ सत्ता या स्थिति है। गायत्री के २४ अक्षर या प्रकृति के २४ तत्त्व के कारण इसे भू कहा गया है, क्योंकि भ २४वां अक्षर है (व्यञ्जन वर्ण में क से)। निर्माण की अवस्था भुवः (बनता हुआ) लोक है। निर्माण का क्षेत्र तथा उसका कारण स्वः लोक है-इसके कारण सुकृत होता है, स्वयं निर्माता है आदि। विन्दु के ९ विभाजनों के अनुसार सृष्टि के ९ स्तर हैं, जिन्हें ९ सर्ग कहा गया है। भागवत पुराण (३/१०) में अव्यक्त को मिलाकर १० सर्ग कहे गये हैं-इसके अनुसार ९ नादों का मूल रूप महाविन्दु कहा गया है। विष्णु पुराण (१/५/१९-२४) के ९ सर्ग है-

प्राकृत-१. महत्तत्व, २. तन्मात्रा, ३. वैकारिक (इन्द्रिय सम्बन्धी)।

२. वैकृत-४. मुख्य (पर्वत, वृक्ष आदि स्थावर), ५. तिर्यक् स्रोत (कीट पतंग आदि), ६. ऊर्ध्व स्रोत (देव सर्ग), ७. अर्वाक् स्रोत (मनुष्य सर्ग), ८. अनुग्रह सर्ग (सात्विक तथा तामसिक)।

प्राकृत तथा वैकृत-९. कौमार सर्ग।

आदित्य तथा वराह-सभी धामों के निर्माण के मूलस्रोत आदित्य हैं, जिससे आदि (आरम्भ) हुआ। अर्यमा, वरुण तथा मित्र-ये स्वयम्भू, परमेष्ठी तथा सौर मण्डल के आदित्य हैं। निर्माण प्रक्रिया की अवस्था वराह है। मूल अवस्था जल जैसा समरूप है, निर्मित अवस्था भू (पृथ्वी या मिट्टी जैसा है), उसके बीच की अवस्था वराह का अर्थ सुअर (शूकर) है, जो जल-स्थल दोनों में रहता है। इसे मेघ भी कहा गया है, जो जल तथा वायु का मिश्रण है। आकाश में ५ वराह हैं-

१. स्वयम्भू- आदि वराह

२. परमेष्ठी-यज्ञ वराह

३. सौर मण्डल-श्वेत वराह

४. पृथ्वी तथा अन्य ग्रह-भू वराह

५. पृथ्वी का वातारण-एमूष वराह (वायु मण्डल)

पृथ्वी पर ४ प्रकार के मेघ कहे गये हैं-नाग, पर्वत, वृषभ, अर्बुद। या, जल की मात्रा के अनुसार -पुष्कर, आवर्त्त, संवर्त्त, द्रोण।

९ प्रकार के निर्माण सर्गों के ९ चक्र हैं, जिनकी माप से ९ प्रकार के काल-मान सूर्य सिद्धान्त (१४/१) में कहे गये हैं-

ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यं च गौरवम्। सौरं सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।।

१. ब्राह्म-अव्यक्त से व्यक्त की सृष्टि ब्रह्मा का दिन तथा उसके लय को रात्रि कहा जाता है-

सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः।।१७।।
अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वे प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्त संज्ञके।(गीता ८/१८)

पुराणों तथा सूर्य सिद्धान्त आदि ज्योतिष ग्रन्थों के अनुसार १२,००० दिव्य वर्षों का १ युग होता है। ज्योतिष में १ दिव्य वर्ष ३६० सौर वर्षों का है, अतः

ब्रह्मा का दिन = १००० युग = १००० x ३६० x १२००० = ४३२ कोटि वर्ष।

आधुनिक भौतिक ज्योतिष के अनुसार दृश्य जगत् की सीमा उतनी ही है, जितनी दूर ब्रह्मा के दिन-रात्रि में प्रकाश जाता है, अर्थात् ८६४ कोटि प्रकाश-वर्ष की त्रिज्या का क्षेत्र।

२. प्राजापत्य-प्रजापति ने यज्ञ अर्थात् उपयोगी पदार्थों का निर्माण किया (गीता ३/१०)। सृष्टि में निर्माण कार्य आकाश-गङ्गाओं के निर्माण से आरम्भ हुआ। अतः आकाश-गङ्गा का अक्ष-भ्रमण काल प्राजापत्य काल है। आकाश-गङ्गा के तारों की संख्या मनुष्य मस्तिष्क के कोषों की संख्या के समान है, अतः आकाश-गङ्गा विराट् मन है, तथा उसका अक्ष-भ्रमण काल मन्वन्तर कहा जाता है। यह प्रायः ३० कोटि ६८ लक्ष वर्ष का है। आधुनिक अनुमान से अकाश-गङ्गा केन्द्र से २/३ त्रिज्या दूरी पर सूर्य २०-२५ कोटि वर्षों में परिक्रमा करता है, अतः मन्वन्तर का मान तथा परिभाषा इससे ज्यादा शुद्ध है।

३. दिव्य मान-सौर वर्ष को दिव्य दिन कहा जाता है, उत्तरायण गति दिन तथा दक्षिणायन गति रात्रि है। अतः ३६० सौर वर्षों का दिव्य वर्ष होगा। यह ३ प्रकार से परिभाषित है-(१) ऐतिहासिक परिवर्त्तन का चक्र-इसके अनुसार वायु, कूर्म आदि पुराणों में २८ व्यासों की सूची में इसे परिवर्त युग कहा गया है। (२) १०० कोटि योजन व्यास का लोकालोक भाग अर्थात् नेपचून तक की ग्रह कक्षा से कुछ दूर तक का भाग। वहां स्थित कोई काल्पनिक ग्रह ३६० वर्षों में सूर्य की परिक्रमा करेगा। (३) उत्तरायण-दक्षिणायन को दिन-रात्रि (गीता ८/२४,२५) मानने से सौर वर्ष दिन के बराबर है।

४. गुरु मान-गुरु ग्रह १२ वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करता है, अतः गुरु द्वारा १ राशि को मध्यम गति से पार करने का समय (प्रायः ३६१ दिन ४ घण्टा) १ गुरु वर्ष होगा। उत्तर

भारत में सूर्य-सिद्धान्त मत से इसे ही गुरु वर्ष मानते हैं, दक्षिण भारत में पैतामह सिद्धान्त से सौर वर्ष को ही गुरु-वर्ष मानते है।
५. सौर मान-सूर्य की १° गति १ दिन, ३०° गति १ मास तथा परिभ्रमण काल १ वर्ष है।
६. चान्द्र मान- सूर्य तुलना में चन्द्र गति अर्थात् चन्द्रमा की कला (प्रकाशित भाग की मात्रा) का चक्र २९.५ दिन चान्द्र मास है। दर्श (चन्द्रमा का प्रथम दर्श से १ दिन पूर्व) से पूर्णिमा (पूर्ण प्रकाशित चन्द्र) तक शुक्ल पक्ष में १५ तिथि (प्राय: १५ दिन हैं। पूर्णिमा से दर्श तक कृष्ण पक्ष में भी १५ तिथि है। १२ चान्द्र मास अर्थात् प्राय: ३५४ दिन का चान्द्र वर्ष होता है। प्राय: ३१ चान्द्र मासों के बाद १ अधिक मास जोड़ कर इसे सौर वर्ष के तुल्य किया जाता है।
७. पितर मान-चन्द्रमा के ऊपरी (विपरीत) भाग में पितर रहते हैं। उनके लिये हमारा कृष्ण पक्ष दिन तथा शुक्ल पक्ष रात्रि होती है। उनका ३० दि-रात्रि १ पितर-मास तथा ३६० दिन-रात्रि (प्राय: १५ वर्ष) पितर वर्ष होता है।
८. सावन मान-सूर्योदय से आगामी सूर्योदय तक सावन दिन, ३० दिन का मास तथा १२ मास का वर्ष होता है।
९. नाक्षत्र मान-स्थिर नक्षत्रों की तुलना में पृथ्वी का अक्ष-भ्रमण काल (प्राय: २३ घण्टा ५६ मिनट) नाक्षत्र दिन, ३० दिन का मास तथा ३६० दिन का वर्ष होगा।

५. ब्रह्म-गायत्री-यह बृहदारण्यक उपनिषद् (५/१४/१-४) में गायत्री मन्त्र के ३ पादों के पुन: ३-३ भाग कर उत्पत्ति का क्रम समझाया गया है। देवरहवा बाबा इसे ब्रह्म-गायत्री मन्त्र के रूप में दीक्षा देते थे। दीक्षा का मन्त्र तथा उसकी साधना विधि उसी परम्परा से प्राप्त करनी चाहिये। यहाँ केवल उसका शब्दार्थ तथा सृष्टि क्रम के विस्तार के बारे में बताया जायगा।

उपनिषद् का मन्त्र है-

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत् स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्था एतदेवं पदं वेद ।।१।।
भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ-ये आठ अक्षर हैं। आठ अक्षरवाला ही गायत्री का एक (प्रथम) पाद है। यह (भूमि आदि) ही इस गायत्री का प्रथम पाद है। इस प्रकार इसके इस पद को जो जानता है, वह इस त्रिलोकी में जितना कुछ है, उस सबको जीत लेता है।

ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत् यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध योऽस्या एतदेवं पदं वेद।।२।।
ऋचा, यजूंषि, सामानि-ये आठ अक्षर हैं। आठ अक्षरवाला ही गायत्री का एक (द्वितीय) पाद है। यह (ऋक् आदि)ही इस गायत्री का द्वितीय पाद है। जो इस प्रकार इसके इस पाद को जानता है, वह जितनी भी त्रयी विद्या है, उन सबको जीत लेता है।
प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत् स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्य एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति यद् वै चतुर्थं तत् तुरीय दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपस्येवं हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद।।३।।
प्राण, अपान, व्यान-ये आठ अक्षर हैं। आठ अक्षरवाला ही गायत्री का एक (तृतीय) पद है। यह प्राणादि ही इस गायत्री का तृतीय पाद है। जो गायत्री के इस पद को इस प्रकार जानता है, वह जितना यह प्राणि समुदाय है, सबको जीत लेता है। और यह जो तपता (प्रकाशित) है, वही इसका तुरीय, दर्शत एवं परोरजा पद है। जो चतुर्थ होता है, वही तुरीय कहलाता है। दर्शतं पदम् का अर्थ है-मोनो (यह आदित्यमण्डलस्थ पुरुष) दीखता है। परोरजा का अर्थ है-यह सभी रज (लोकों) के ऊपर ऊपर रहकर प्रकाशित होता है। जो गायत्री के चतुर्थ पद को सस प्रकार जानता है, वह इसी प्रकार की शोभा और कीर्त्ति से प्रकाशित होता है।
सैषा गायत्र्येकस्मिन् स्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद् वै तत् सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद् यदिदानीं द्वौ विवद् मानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद् वै तत् सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत् प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादोगीय इत्येवंवेषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद् यद् गयांस्तत्रे तस्माद् गायत्री नाम स यामेवामूं सावित्रीमन्वाहै वैष सा स यस्मा अन्वाह तस्य त्राणांस्त्रायते।।४।।
वह यह गायत्री इस चतुर्थ दर्शत पद परोरजा पद में प्रतिष्ठित है। वह पद सत्य में प्रतिष्ठित है। चक्षु ही सत्य है, चक्षु ही सत्य है-यह प्रसिद्ध है। इसीसे यदि दो पुरुष मैंने देखा है, मैंने सुना है इस प्रकार विवाद करते हैं, तो हम उसी का विश्वास करते हैं, जिसने देखा है। वह तुरीय पद का आश्रयभूत सत्य बल में प्रतिष्ठित है। प्राण ही बल है, वह सत्य प्राण में प्रतिष्ठित है। इसीसे कहते हैं कि सत्य की अपेक्षा बल ओजस्वी

है। इस प्रकार यह गायत्री अध्यात्म प्राण में प्रतिष्ठित है। इस गायत्री ने गयों का त्राण किया था। प्राण ही गय हैं, उन प्राणों का इसने त्राण किया। इसने गयों का त्राण किया था, इसीसे इसका गायत्री नाम हुआ। आचार्य ने आठ वर्ष के वटु के प्रति उपनयन के समय जिस गायत्री का उपदेश किया था वह यही है। वह जिस जिस वटु को इसका उपदेश करता है, वह उसके उसके प्राणों की रक्षा करती है।
जप के लिये ब्रह्म गायत्री मन्त्र-
ॐ भूमिरन्तरिक्षं द्युः, ऋचो यजूंषि सामानि, प्राणोऽपानो व्यानः, दर्शतं दर्शतं पदं परोरजाः।
सृष्टि का क्रम-(१)-ॐ कार-इसमें पहले महाविन्दु से विन्दु के ९ स्तर हुये। उसके ३ रूप हुए-अ, उ, म। ये ॐकार के १२ रूप हुये। विन्दु को १ मानने पर, ॐकार के ४ रूप हैं। इनकी व्याख्या माण्डूक्य उपनिषद् के १२ श्लोकों में की गयी है। यह ब्रह्म की त्रिगुणात्मक प्रकृति है, जिसे पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिव कहा गया है। इनका विस्तार ३ व्याहृति तथा गायत्री के ३ पद हैं।
विन्दु को अपाद तत्त्व कहा गया है-अपदसि नहि पद्यसे, नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय (बृहदारण्यक उपनिषद् ५/१४/७)
अमात्रश्चतुर्थः (माण्डूक्य उपनिषद्)
अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम् (ऋक् १/१५२/३)
अमात्रं त्वां धिषणातित्विषेमहि (ऋक् १/१०२/६)
परो मात्रया तन्वा वृधान ते महित्वमन्वश्नुवन्ति। (ऋक् ७/९९/१)
अपादग्रे समभवत् (अथर्व १०/२/२१)
(२) ३ व्याहृति-यह ३ या ७ लोकों के रूप में है। प्रत्येक धाम के ३-३ लोक मिलकर ७ लोक हैं, जो पूर्व अध्याय में बताये गये हैं, तथा पिछले अनुच्छेद में भी उल्लेख है। यहां इसे गायत्री के प्रथम पद का विस्तार माना गया है। प्रथम पद सृष्टि क्रिया के विषय में है। इसकी विभिन्न क्रियाओं को अलग अलग देवताओं के रूप में समझा जाता है। ब्रह्मा मूल पदार्थ है। सभी की उत्पत्ति आकाश से हुयी। आकाश के ३ भाग क्रिया के लिये हैं-समपूर्ण प्रक्रिया का क्षेत्र स्वः है, जिसे यहां द्यु कहा गया है। निर्माणाधीन क्षेत्र भुवः है-यह बीच की स्थिति है, जिसे अन्तरिक्ष कहा गया है। निर्माण का आधार भू है। सीमाबद्ध भाग भूमि है, उसका प्रभाव क्षेत्र भूमा है। इसका निकटवर्त्ती भाग अन्तरिक्ष

तथा दूरतम सीमा द्यु है।
साम वा असौ लोकः, ऋगयं (लोकः)। (ताण्ड्य महा ब्राह्मण ४/३/५)
ऋचामग्निर्दैवतं पृथिवीस्थानम्। यजुषां वायुर्दैवतं अन्तरिक्षस्थानम्। साम्नामादित्य दैवतं द्यौः स्थानम्। अथर्व्वणां चन्द्रमा दैवतमापः स्थानम्। (गोपथ ब्राह्मण, पूर्व १/१९)
(३) निर्माण-निर्माण की क्रिया ही ३ वेद हैं। मुख्य निर्माण कर्त्ता सूर्य को त्रयी वेदमय कहा गया है। सूर्य का पिण्ड ऋक् है, उसकी भीतरी क्रिया कृष्ण यजुर्वेद, बाहरी विकिरण शुक्ल यजुर्वेद तथा प्रभाव क्षेत्र साम है।
यतेदन्मण्डलं तपति-तन्महदुक्थं, ता ऋचः, स ऋचां लोकः। अथ यतेदर्चिर्दीप्यते-तन्महाव्रतं, तानि सामानि, स साम्नां लोकः। अथ य एव एतस्मिन् मण्डले पुरुषः-सोऽग्निः, तानि यजूंषि, स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति। तद्धैतदप्यविद्वांस आहुः-त्रयी वाऽ एषा विद्या तपतीति। वाग्धैव तत् पश्यन्ती वदति। (शतपथ ब्राह्मण १०/५/२/१-२)
साम ३ प्रकार के कहे गये हैं, विष्णु-सहस्रनाम में उनको त्रिसामा कहा गया है।
उभे बृहद्रथन्तरे भवतः। इयं वाव रथन्तरं, असौ बृहत्। आभ्यामेवैनमन्तरेति-वाचश्च, मनसश्च। प्राणाच्च, अपानाच्च। दिवश्च, पृथिव्याश्च। सर्वस्माद्वित्ताद्, वेद्यात्। (तैत्तिरीय ब्राह्मण १/४/६)
तानि त्रीणि भूत्वा रथन्तरञ्च, वैरूपं च, शाक्वरं च-बृहच्च, वैराजं च, अत्यमन्यन्त। तद् बृहद् गर्भमधत्त, तद्रैवतमसृजत। (ऐतरेय ब्राह्मण १९/६/२८)
पृथ्वी के साम हैं-रथन्तर, वैरूप, शाक्वर। सूर्य के साम हैं-बृहत्, वैराज, रैवत।
सौर मण्डल के भीतर के ३ क्षेत्र विष्णु के ३ पद हैं। यहां तक सूर्य का अपना क्षेत्र है। इसमें १०० व्यास तक ताप-क्षेत्र, १००० व्यास तक तेज क्षेत्र (सूर्य सहस्रांशो तेजोराशि), तथा उसके बाद प्रकाश या उषा क्षेत्र है, जहां तक सूर्य का प्रकाश आकाश-गंगा से अधिक है। सूर्य जहां तक दीख सकता है, अर्थात् उसकी किरणों का प्रसार जहां तक है, वह विष्णु का परम पद है। इस क्षेत्र को ब्रह्माण्ड कहा जाता है-विराट् ब्रह्म का एक अण्ड। उत्पादक पदार्थ के रूप में इसे आण्ड (अण्ड निर्माता) भी कहा गया है। आकाश-गंगा के बाहर सूर्य विन्दु रूप में भी नहीं दीखता।
स्वयम्भू-सोऽयं पुरुषः प्रजापतिरकामयत-भूयान्त्स्यां प्रजायेय इति। सोऽश्राम्यत, स तपोऽतप्यत। स श्रान्तस्तपस्तेपानो ब्रह्मैव प्रथममसृजत-त्रयीमेव विद्याम्। सैवास्मै प्रतिष्ठाभवत्। तस्मादाहुः-ब्रह्म, अस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा-इति। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/८)

परमेष्ठी-तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेवास्य सोऽसृज्यत। सेदं सर्वमाप्नोत्-यदिदं किञ्च। यदाप्नोत्-तस्मादापः। यदवृणोत्, तस्याद्वाः(वारिः)। सोऽकामयत-आभ्योऽद्भ्योऽधिप्रजायेय इति। सोऽनया त्रय्या विद्यया सह अपः प्राविशत्। तत आण्डं समवर्तत। तमभ्यमृशत्-अस्तु इति। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/९,१०)
सौर मण्डल-ततो ब्रह्मैव प्रथममसृज्यत त्रय्येव विद्या। तस्मादाहुः-ब्रह्म अस्य सर्व्वस्य प्रथमजम्, इति। तदस्य तन्मुखमेवासृज्यत। मुखं ह्येतदग्नेर्यद् ब्रह्म। (शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/१०) आपो वा इदमग्रे सलिलमेवास। ता अकामयन्त-कथं नु प्रजायेमहि-इति। ता अश्राम्यन्, तास्तपोऽतप्यन्त। तासु तपस्तप्यमानासु हिरण्मयाण्डे सम्बभूव। (शतपथ ब्राह्मण ११/६/१/१) यदेतन्मण्डलं तपति-तन्महदुक्थं, ता ऋचः, स ऋचां लोकः। अथ यदर्चिर्दीप्यते-तन्महाव्रतं, तानि सामानि, स साम्नां लोकः। अथ एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः-सोऽग्निः, तानि यजूंषि, स यजुषां लोकः। सैषां त्रय्येव विद्या तपति। (शतपथ ब्राह्मण १०/५/२/१,२)
(४) प्राण क्रिया-किसी भी सीमित क्षेत्र को आकाश कहते हैं। उसमें ३ प्रकार की गति से परिवर्तन हो रहे हैं-बाहर से जो आता है वह प्राण है। भीतर से बाहर निकलने वाला अपान है। भीतर में ही जो गति हो रही है, वह व्यान है।
यद्वै प्राणेनान्नमात्मन्प्रणयते तत्प्राणस्य प्राणत्वम् (शतपथ ब्राह्मण १२/९/१/४)
प्रेति (प्र+इति) वै प्राण, एति (आ+इति) उदानः। (शतपथ ब्राह्मण १/४/१/५)
प्राणा वै देवा वयोनाधाः(यजु १४/७) प्राणैर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम् (शतपथ ब्राह्मण ८/२/२/८)
प्राणा वा ऋषयः (यजु १५/१०) (ऐतरेय ब्राह्मण २/२७, शतपथ ब्राह्मण ६/१/१/१, ८/४/१/५, ८/६/१/५, १४/५/२/५)
अपानेन हि मनुष्या अन्नमदन्ति (शतपथ ब्राह्मण १०/१/४/१२)
अपानादन्तरिक्षलोकः (कौषीतकि ब्राह्मण ६/१०)
व्यानः प्रतिहर्त्ता (कौषीतकि ब्राह्मण १७/७, गोपथ उत्तर५/४)
व्यानादमुं (द्यु) लोकम् (कौषीतकि ब्राह्मण ६/१०)
निक्रीडित इव ह्ययं व्यानः (षड्विंश ब्राह्मण २/२)
सभी प्रकार की शक्ति या उससे उत्पन्न गति आदि प्रभावों को प्राण कहते हैं। उसके ३ भेद गायत्री के अनुसार हैं। शरीर के भीतर ५ प्राण कहे जाते हैं-प्राण, अपान, व्यान,

समान, उदान। ५ उप-प्राण मिलाकर १० प्राण भी हैं। योग-मार्ग में प्राणायाम का अर्थ २ विपरीत प्राणों का समन्वय है-प्राण तथा अपान । प्राण में अपान का तथा अपान में प्राण का हवन प्राणायाम यज्ञ है (गीता ३/१८) मुण्डकोपनिषद् (२/१/८) में ७ प्राण कहे गये हैं। उसमें एक ऋषि प्राण है, जो असत् (अदृश्य) निर्माता है। इन सबका मूल कल्पना से परे है, जिसे परोरजा प्राण कहते हैं। ये २ असत् या अनुभव से परे हैं-इन्हें छोड़कर ५ प्राण हैं। सीमित आकाश तथा बाहर की परस्पर क्रिया के लिये ३ प्राण ब्रह्म-गायत्री में कहे गये हैं।
(५) परोरजा-रजः का अर्थ लोक है, अर्थात् जो दीखता है। दृश्य जगत् से परे जो कर्त्ता है, उसे परोरजा कहते हैं। यह कल्पनातीत है।
इमे वै लोका रजांसि (यजु ११/६) शतपथ ब्राह्मण (६/३/१/१८)
द्यौर्वै तृतीयं रजः (शतपथ ब्राह्मण ६/७/४/५)
एष वाव स परो रजा इति होवाच। य एष (सूर्यः) तपति। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१०/९/४)
६. गायत्री तथा विश्व के पद-(१) अपाद तत्त्व-गायत्री में विन्दु शून्य रूप है। इसे अपाद कहा गया है। विश्व का मूल तत्त्व एक ही है। सारे विश्व में विज्ञान के नियम एक ही हैं। मनुष्य या अन्य जीव कुछ भिन्नता होने पर भी एक ही प्रकार के हैं। यह विश्व का सूक्ष्मतम या बृहत्तम रूप है-
अणोरणीयान् महतो महीयान् (कठोपनिषद् ३/१/२)
किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमः स्वित् कथाऽऽसीत्। (ऋक् १०/८१/२)
यह अपाद या अमात्रा है-अपदसि नहि पद्यसे, नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय (बृहदारण्यक उपनिषद् (५/१४/७)
अमात्रश्चतुर्थः (माण्डूक्य उपनिषद्)
अपादेति प्रथमा पद्वतीनाम् (ऋक् १/१५२/३)
अमात्रं त्वां धिषणातित्विषेमहि (ऋक् १/१०२/७)
परो मात्रया तन्वा वृधान ते महित्वमन्वश्नुवन्ति। (ऋक् ७/९९/१)
अपादग्रे समभवत् (अथर्व १०/२/२१)
(३) त्रिपाद-इसका आरम्भ ॐ की तीन मात्राओं से हो जाता है-अ, उ, म। यह ३ गुणों का प्रतीक है। इसके बाद ३ व्याहृति ३ लोक हैं। गायत्री के ३ पाद ३ प्रकार की क्रिया

हैं-सृष्टि, गति तथा ज्ञान। या आधिविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक जगत् का परस्पर सम्बन्ध। यह वाक्, मन, प्राण भी कहा गया है।-

त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वम् (ऋक् १/१६४/२)

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः (ऋक् १/२२/१८)

एतन्मयो वा अयमात्मा वाङ्मयो मनोमयः प्राणमयः (बृहदारण्यक उपनिषद् १/३/१०)

अन्नमयं हि सोम्य मनः आपोमयः प्राण तेजोमयी वाक्। (छान्दोग्य उपनिषद् ६/५/४)

ऋचं वाचं प्र पद्ये, मनो यजुः प्र पद्ये, साम प्राणं प्र पद्ये (यजु ३६/१)

वागेवायं लोकः, मनोऽन्तरिक्षलोकः, प्राणोऽसौ लोकः

त्रयो वेदा एत एव, देवाः पितरो मनुष्या एत एव। माता पिता प्रजा एव विज्ञानं विजिज्ञाख्यं अविज्ञातमेत एव। (बृहदारण्यक उपनिषद् १/४/५-१३)

(४) चतुष्पाद-मूल तत्त्व के ३ भाग होते हैं। मूल को मिलाने पर त्रयी का अर्थ ४ वेद है। ॐकार में विन्दु को मिलाकर ४ पद हैं (३ १/२ मात्रा)। वाक् के भी ४ पद है। ४ प्रकार के पुरुष (विश्व के रूप) हैं-क्षर= बाहर से दृश्य रूप, अक्षर = क्रियात्मक रूप या परिचय, अव्यय = परिवेश का भाग, परात्पर = मूल तत्त्व का अभेद ।-

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि (पुरुष सूक्त ३)

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि (ऋक् १/१६४/४५)

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् (ऋक् १/२२/१७)

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः (ऋक् १/२२/२०)

(५) ५ पद-विश्व की रचना आकाश में ५ स्तरों में हुयी-स्वयम्भू, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र तथा पृथिवी। अतः वेद के ५ अर्थ (३ भी हैं), ५ प्रकार के दैनिक कर्म (५ महायज्ञ, ५ नमाज, सिखों के ५ ककार) अदि हैं।

पञ्चस्वन्तः पुरुष आ विवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि । (यजु २३/५२)

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम्।

अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् ।।

(प्रश्न उपनिषद् १/११, ऋक् १/१६४/१२, अथर्व ९/१४/१२)

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।

पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद् भेदां पञ्चपर्वामधीमः।

(श्वेताश्वतर उपनिषद् १/५)

(६) ८ पद-गायत्री के प्रत्येक पद में ८ अक्षर हैं। गायत्री छन्द में ६-६ अक्षरों के ४ पाद हैं पर गायत्री मन्त्र में अर्थ के अनुसार ८-८ अक्षरों के ३ पद हैं। प्रथम पद में १ कम है-वह ७ लोकों के लिये है। ८ प्रकार के विश्व स्वरूपों के बारे में विस्तार से अध्याय २ में कहा गया है। विश्व में वस्तुओं के ८ रूप ८ वसु हैं। अग्नि (पिण्ड) के रूप में ८ वसु, गति के रूप में ११ रुद्र तथा तेज या प्रभाव के रूप में १२ आदित्य हैं। ये सभी शिव (विश्व का ज्ञान) के रूप हैं, अतः शिव को अष्टमूर्त्ति या ११ रुद्र आदि कहा गया है। वाक् को भी अष्टापदी कहा गया है।

७ लोक या निर्माण स्रोत-सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितम् (ऋक् १/१६४/१३)

सप्तदिशो नाना सूर्याः (ऋक् ९/११४/३)

ये त्रिषप्ता परियन्ति विश्वाः (अथर्व १/१/१)

सप्तास्यासन् परिधयः त्रिसप्त समिधः कृताः(पुरुष सूक्त)

८ पद-अष्टापदी नवपदी बभूवुषी (ऋक् १/१६४/४१)

वाचामष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् (ऋक् ८/७६/१२)

१ अक्षर में ८ वर्ण तक संयुक्त हो सकते हैं। उनमें मध्य स्वर वर्ण के २ शक्ति विन्दु हैं, बाकी के १-१। अतः अष्टापदी अक्षर रूपी वाक् में ९ शक्ति विन्दु हैं।

(७) सभी प्रकार के पद या भेद-एक ही विश्व के कई भेदों के रूप में वर्णन हैं।

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।

अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् (ऋक् १/१६४/४१)

एकपाद भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्योत पश्चात्।

चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपस्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः। (ऋक् १०/११७/८)

अध्याय ४

धी योग

१. **धी योग**-धी योग का वर्णन महर्षि दैवरात ने वेदार्थ कल्पलता ग्रन्थ में किया है। गायत्री का तीसरा पद ब्रह्म द्वारा स्वयं को प्रेरित करने के विषय में है। इसी का साधन धी योग है। यह क्रिया तथा उसके फल-दोनों रूपों में है। क्रिया है विश्व के आधिदैविक तथा आधिभौतिक रूपों के समन्वय से अपने मन को सशक्त करना तथा उससे शारीरिक शक्ति का विकास कर कार्य में दक्ष होना। ज्ञान का अर्जन २ प्रकार का यज्ञ है-ज्ञान यज्ञ तथा स्वाध्याय यज्ञ (गीता ३/२८)। मन की क्षमता बढ़ाने को योग सूत्र तथा ऋग्वेद में मनोजवित्व कहा गया है। इन सभी रूपों की अलग अलग व्याख्या यहां की जायगी।

२. **महर्षि दैवरात वर्णन**-धी योग का अधार ऋक्-मन्त्र से लिया है-

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगसिन्वति। (ऋक् १/१८/७)

तस्यायमर्थः-यस्माद् ब्रह्मणस्पतेः परमपुरुषात् ऋतेविपश्चितः-ज्ञानिनोऽपि यज्ञः न सिध्यति, तादृशः सः परमात्मा धीनां योगं सर्वासां धियां एकस्मिन् लक्ष्ये संयोगमनुसृत्य स्वयमेव इन्वति-दीप्यते प्रकाशते स्वरूपेण आविर्भवतीति यावत्।

अर्थात् बिना परमपुरुष में ध्यान किये ज्ञानियों का भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता। उसके एकमात्र लक्ष्य में ध्यान कर मन का संयोग कर उसकी प्रेरणा से प्रकाशित करने पर ही उसका स्वरूप प्रकट होता है। यह धी योग है।

आचार्य बौधायन का संन्यास विधान भी गायत्री मन्त्र का प्रयोग कहता है-

ॐ भूः तत् सवितुर्वरेण्यं गायत्रीं प्रविशामि। ॐ भुवः भर्गोदेवस्य धीमहि सावित्रीं प्रविशामि, ॐ स्वः धियोयोनः प्रचोदयात् सरस्वतीं प्रविशामि।

यथोपदेशमनुप्रवेशात् तदर्थसिद्धिं कृतकृत्यतादि समृद्धिं च अभिमन्यन्ते, सर्वेऽपि वेदविदो विपश्चितः इति निर्विवादमभ्युपगन्तव्यमेव भवति, तथाऽस्तु। तत्रैव अन्यदपि विषयवैशिष्ट्यमस्ति तच्च गायत्रीमन्त्रे महावाक्यार्थ सत्वम्-सन्न्यासे उपदेष्टत्यानां तथा ब्रह्मात्मतत्त्वावबोधार्थं उपनिषदि उपदिष्टानां-तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म-इत्यादीनां महावाक्यानां रहस्यार्थं तत्त्वं अस्मिन् गायत्री मन्त्रे गुप्तरूपेण वाच्यार्थ-लक्ष्यार्थ-ध्वन्यार्थादि रूपेण सूक्ष्मसत्त्वेन प्रतिष्ठितमस्तीति प्रतिज्ञायते, तथाहि-अस्मिन् मन्त्रे तत् इति प्रथम पदं वाच्यार्थत एव परोक्षसिद्धस्य परब्रह्मवस्तु तत्त्वस्येव बोधकमितिसुप्रसिद्धमेव-तदिति परोक्षे विजानीयात्, ॐ तत् सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः

स्मृतः-इत्यादिं तद्वचनम्।

अर्थात् गायत्री मन्त्र सूक्ष्म रूप में सभी ४ महावाक्यों का निर्देश करता है जिनका ज्ञान सन्न्यास के समय गुरु द्वारा कराया जाता है, अतः गायत्री मन्त्र के ३ चरणों द्वारा गायत्री, सावित्री, सरस्वती में प्रवेश किया जाता है।

इनका श्लोकों में भी वर्णन किया गया है-

धियः-धीयन्ते ऽत्र चिदात्मनाऽन्तरखिलैर्याश्चेतना वृत्तयः,
सत्संविद्ग्रहणाय बाह्यविषयैस्त्यागाय योगाय वै।
ज्ञानेच्छाकृतिशक्तिचित्प्रकृतयः स्वान्तर्धियः चेतनं,
स्वात्मानं दधते समस्तरसदं सत्यं निजं साक्षिणम्।।

धियः इन्द्रात्मलिङ्गात्मिकाः-इन्द्रस्यात्मन एव ता हृदि धियो लिङ्गात्मिका बोधकाः,
इन्द्रेऽन्तःकरणात्मिकाः प्रतिहिताः सर्वार्थसंसाधकाः।
बाह्यान्तर्यसमस्तवस्तुविषये साक्षात् प्रमाणात्मिकाः,
प्राज्ञात्मन्युपसंश्रिताः समधियो ज्ञानादि संग्राहकाः।।

धीमहि (ध्यायामः-ध्यायेमहि)-ज्योति र्धीमहि तद् वरेण्यममृतं ध्यायेमहि स्वान्वयं,
धीभिस्तेन समीरिताभिरचलं सञ्चिन्तयामो वयम्।
तत्रैकाग्रतया धिया प्रतिहिताः सम्भावयन्तोऽन्तरे,
तेजोधारणया समाहितदृशा ध्यायाम आत्मान्तरम्।।

निधीमहि-ज्योतिः सर्वसुखास्पदं स्वरसदं ध्येयं धिया संविदा,
ध्यानेनात्मनि सन्निधीमहि हृदा सन्धारयामः सदा।
तस्मिञ्ज्योतिषि गोपनाय निधिवत् संस्थापयामो धियः,
स्वात्मानं सह धीभिरेवपरमे शान्त्याऽर्पयामो मुदा।।

अध्यात्मम्-योऽस्माकं हृदये शरीरनिलये सन् प्रत्यगात्मा स्वयं,
यो धीभिश्च सचेतनो विरमते सर्वात्मसत्त्वान्वयम्।
सर्वार्थव्यवहारसाधनकृते स्वीयाः पुनर्भावयन्,
ज्ञानेच्छाकृति चेतनो निजधियो नित्यं दधात्यात्मनि।।

सर्वाण्येव हि धीन्द्रियाण्यनुनयन् वृत्त्याऽवलब्ध्यैव यः,
सर्वार्थान् प्रति संगृहीष्यति धिया ज्ञानादि रूपोदितान्।
तादर्थेन च चोदयात्यनुलवं सर्वाधियो भावयन्,
सामर्थ्यात् परमार्थतोऽनुभवति स्वीयं सुसत्त्वं स्वयम्।।

स्वस्यैवानुभवार्थमात्मनि धिया पूर्णात्मभावान्वयाज्,
ज्ञानोपासनकर्मयोगपरया सन्निष्ठयाऽन्तर्दृशा।
ध्येयं साधयितुं परात्मरसदं तत् पारमार्थास्पदं,
तद् ध्यानाय धियः प्रचोदयति यः सोऽयं चिदात्मा स्वयम्।।
यस्मादात्मनि संहिता निजधियो योऽन्तः प्रसूतेऽनिशं,
तस्मात् सोऽयमहम्मतेः प्रसविता सञ्चेतनात्मा स्वयम्।
देवोऽयं निजधीन्द्रियैश्चितिमयैः सम्पादितं सर्वशः,
सर्वं ज्ञानमयं प्रकाशयति यः सर्वार्थसम्बोधकः।।
प्रत्यञ्चीह चिदात्मनोऽस्य सवितुर्देवस्य दिव्यात्मनः
दिव्यं ज्योतिरदः परं समुदितं साक्षात् प्रपश्यन् दृशा।
ध्यायन् निश्चलभावतः स्वरसतो धीयोगसत्त्वान्वयाद्
ध्येयं तत् परमं पदं निजमियाच्चैतन्यमेवान्तरम्।।

धीयोगाभ्यासप्रक्रिया

धीयोगाभ्यसनं भवेत् कृतिमुखात् तत्प्रक्रियाऽऽध्यात्मिकी,
ध्येयैकाग्रपदानलक्ष्यमुखतस्तादात्म्य निष्ठात्मिकी ।
ध्यानाद् धारणया समाधिमुखतो वित्कर्म भावात्मिकी,
धीनामात्मनि संयमेन विरतेरध्यात्मविद्यात्मिकी।।
अध्यात्मं सकलानुभावपरमा वाग्-वस्तु संवित्तमा,
स्वाध्यायाद्यनुशीलनादिनियमा सद्भावना सत्तमा।
अभ्यासादनुसारिणी स्वनिगमा विद्याऽनवद्यात्तम,
स्वध्येयाभ्युदयैकसाधकतमा हृद्याऽनुवेद्याऽन्तिमा।।
स्वान्तर्जागृतिसत्त्वमेव परमं सज्ञान-भाव-क्रियं,
स्वान्ते सन्ततमप्रमादकरणं साभ्याससत्प्रक्रियम्।
वेदा देवगणाश्चिदात्मनिरतं तं जागृवाँसं जनं,
वेद्य-ध्येयसमृद्धिसाधनकृते सर्वेऽनुयन्ति स्वयम्।।
जागर्त्तीह निजान्तरेऽखिलनृणां वैश्वानरोऽग्निः सदा,
प्राणः स्वात्मचिदन्वयानुकरणः प्राज्ञोऽन्तरः संविदा।
ब्रह्माण्डे बहिरप्यसौ च सविता धीनां प्रति प्रेरकः,
सर्वात्मा हृदि चेतनो निजचिता सञ्जागृवान् मूर्धगः।।

लोके जागृति कामना परवशः सत्साधनैकातुरः,
स्वेष्टं साधयितुं प्रकृष्टमहसं सञ्जागृवाँसं परम्।
प्रत्यक्षं प्रतिवेदितुं हि ततमं प्रत्येति विद्वत्तमं,
प्राप्नोति प्रकृतेः परं प्रगतितो ध्येयं परं सत्तमम्।।
प्रत्यञ्च्यन्तरहञ्चिता स्फुरति या वाक् संविदा सस्वना,
प्रत्क्षाऽप्यपरोक्षसत्त्वकलया सा संविदानाऽऽत्मना।
सप्तभ्यो निजधीभ्य आन्तरतमा स्याद् अष्टमीन्द्रानना,
सर्वाः प्रेरयतीह ता निजधियः प्रत्येति सच्चेतना।।
प्रत्यञ्चिप्रकृतेश्चिदात्मनि रतास्ताः संविदिच्छाक्रियाः,
सर्वेषामपरोक्षगाः स्वरसदास्तद्वाङ्मनप्राणगाः।
श्रोत्रं नेत्रमितिद्वयं सहहितं तन्नामरूपान्वितं,
तत्पञ्चेन्द्रियसंयमात् सममियात् धीयोगसत्त्वान्वयम्।।
प्राणोऽयं बहिरन्तरप्यनुपदं नित्यं चरत्यात्मनः,
प्राणापानगतेः स्वभावगुणतः सञ्जागृवाँश्चित्स्वनः।
शान्त्यान्तः सुनिरीक्ष्यतां समदृशा धीभिः समाभिः समं,
चिद्योगेन नियम्यतां प्रगतिदं सत्त्वं विदाऽन्वीयताम्।
मूलादात्मचिता हृदि स्फुरति वाग् याऽजस्रया धारया,
याऽहञ्चित्स्वरसान्विताऽपि च पराग् वृत्त्या धियाऽपारया।
वाचैव प्रतियोजयन् इह तया गायत्रिमन्त्राक्षरं,
छन्दःसंहितमुच्चरेत् सुमनसा प्राणान्वयात् सुस्वरम्।।
मन्त्रार्थं प्रतिभावयेज्जपविधौ स्वान्तः सुधी संयमे,
शब्दानामपि चान्वयाद् रसनिधौ सद्भावनासङ्गमे।
तद्भावेन समग्रमन्त्रविदितं दिव्यं सदर्थात्मकं,
ध्यायेत् तत् सवितुः स्वरूपकपरं ज्योतिः परात्मार्थकम्।।
स्वान्तः स्वोच्चरितं स्मृतं च मनसा भूयो धिया भावितं,
स्वान्तः श्रोत्रमुखेन सुस्वरमयं शृण्वन् त्स्वमन्त्राक्षरम्।
बाह्यं स्वान्तरमेव वाऽभ्यनिमिषन् पश्यन् बहिश्चक्षुषा,
दिव्यज्यौतिषलभ्यतोऽन्तरदृशा रूपं परं चिन्तयेत्।।

विद्वद्यज्ञः

विद्वद्यज्ञमयोऽयमान्तरतमैर्ऋत्विक्परैर्धीन्द्रियैः,
हृद्यः स्वात्मसमन्वयेव परमः स्यान्मन्त्रयोगोदयः।
सद्योगादुदितः प्रमादरहितः स्वान्तः प्रबोधोच्चयात्,
सद्यः स्वात्मनि सम्प्रसादकलया संवित्प्रकाशोदयः।।
वाग्धोताऽत्र ऋचाऽऽह्वयन् दिविषदो जुह्वद् वषट्कारवान्,
सोऽध्वर्युर्यजुषा यजन् समदृशा सौर्येण चिच्चक्षुषा।
उद्गाता स्वरसामगायनपरः प्राणः स ऐन्द्रोऽन्तरः,
ब्रह्मायज्ञनिरीक्षकः सुमनसा श्रोत्रात्मकोऽग्नीच्छ्रुतः।।
एतेषामिह ऋत्विजां सममतेः स्वान्तर्यधीयोगतः,
दिव्यो यज्ञरथश्चरत्यनुगतेर्वाङ्मानसैकाश्रयात्।
संविद्-भावन-कर्मयोगमुखतः सर्वार्थसिद्धिप्रदा,
गायत्री परमन्त्रयोगरसदा स्यात् प्रक्रियैषा सदा।।
वाचोच्चारमुखात् स्वरश्रवणतः स्पष्टाक्षरं वाचिकं,
जिह्वौष्ठोच्चलनात् स्वराश्रवणभाक् सूक्ष्मादुपांशु स्वरम्।
तन्मन्त्राक्षरसंस्वरस्मरणतो मौनेन सन्मानसं,
मन्त्राणां जपनं हि शास्त्रविहितं त्रेधा प्रयोगात्मकम्।।
तन्मन्त्राक्षरवस्तुबोधपरकं ज्ञानं तदाध्यात्मकं,
तेजोध्यानमुपासनार्थपरकं सद्भावनाकारकम्।
मन्त्राणां जपनं तु वाचिककृतेः कर्मप्रधानार्थकं,
ज्ञानोपासनकर्मणामितिकृतेर्योगो भवेन्मन्त्रतः।।
प्रत्यक्षोर्जितवेदशासनमुखाद् गायत्रिमन्त्राश्रयान्,
निष्कामाचरितेन सन्नियमतः स्यात् कर्मयोगोदयः।
नित्योपासनयाऽऽत्मशान्तिरुदियात् प्रज्ञा प्रतिष्ठादिना,
भूयाद् ब्रह्मणि नित्यकर्मसकलं तद् विश्वशान्तेः कृते।।
निष्कामात् कृतमप्यलं प्रकृतितो व्यर्थं न तत् स्यान्मृषा,
निष्प्रत्यूहतया फलं प्रतिभवेत् सत्यं यथार्थाशिषा।
विश्वस्यैव सुशान्तिसत्त्वकरणे युक्तं समर्थं समं,
यावज्जीवमिदं विदां सुयजनं नित्यानिवार्यं सताम्।।

इन मन्त्रों का शाब्दिक अर्थ कठिन नहीं है, किन्तु इनका वास्तविक अर्थ गुरु द्वारा ही सीखा जा सकता है। अतः इनके अर्थ के बदले अन्य प्रकार से धी-योग की व्याख्या की जा रही है।

३. एकत्व दृष्टि-यह सभी ज्ञान का आधार है तथा ईशावास्योपनिषद् में इस रूप में उल्लेख है-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।६।।
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।७।

जो सभी प्रणियों को (परम-) आत्मा में ही सदा देखता है, तथा सभी प्राणियों में आत्मा को देखता है, उसके बाद वह किसी से घृणा नहीं करता। जो सभी प्राणियों को आत्मा (अपने) समान पूरी तरह समझता है, उसे कोई मोह, शोक नहीं होता तथा वह सभी में एकत्व का अनुभव करता है।

पश्यतः का अर्थ देखना है, अनुपश्यतः उसके बाद का अनुभव है। उपर से सभी अलग-अलग दीखते हैं, बाद में विचार करने पर एक ही लगते हैं।

यही दृष्टि सभी धर्मों तथा विज्ञान का आधार है। इसे कई प्रकार से कहा गया है-

सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छान्दोग्य उपनिषद् ३/१४/१ आदि)
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा (कठोपनिषद् ५/१२ आदि)
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः (श्वेताश्वतर उपनिषद् ६/११)
या इलाह इल् इल्लाह (कुरआन का प्रारम्भ)= जो कुछ है, वह अल्लाह है, उसके सिवा कुछ नहीं है।

इसके कई अर्थ हैं-

(१) संसार में विज्ञान के नियम सभी स्थान तथा सभी समय एक ही हैं। बिना इस धारणा के कोई विज्ञान नहीं हो सकता। अतः यह कहना गलत है कि विज्ञान तथा धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म में ब्रह्म के एकत्त्व पर ही विज्ञान आधारित है। जैसे हम यह मानकर चलते हैं कि भारत के किसी स्थान में जल के एक अणु में हाइड्रोजन के २ तथा ऑक्सीजन का १ परमाणु होते हैं, तो यही अमेरिका तथा ब्रह्माण्ड के दूसरे छोर पर भी होगा तथा हर समय होगा। नहीं तो विज्ञान के नियम हर समय हर स्थान के लिये बदलने पड़ेंगे तथा हम कुछ समझ नहीं पायेंगे।

(२) सभी भाषाओं में शब्दों का समान अर्थ होता है। यदि लोगों के लिये इसका मनमाना अर्थ होने लगे तो कोई किसी से बात नहीं कर पायेगा।

(३) सभी व्यक्ति मूलत: एक ही प्रकार के हैं। उनकी शारीरिक तथा मानसिक वृत्तियां एक समान हैं। इसी आधार पर हमारा व्यवहार होता है। हम यह मान कर चलते हैं कि हमें यदि मिर्च तीखी लगती है तो दूसरे को भी लगेगी । सभी लोगों या पूरे समाज के लिये एक धर्म व्यवस्था का भी यही आधार है। उसमें भी यह मान कर चलते हैं कि हमें जो ठीक लगता है, वही दूसरे को लगेगा तथा धर्म में वही व्यवस्था होगी।

(४) सभी व्यक्ति एक ही लिपि का प्रयोग करते हैं। नहीं तो कोई भाषा नहीं चल पायेगी। शब्दों तथा लिपि का एक स्वरूप कोई सर्वमान्य व्यक्ति ही निर्धारित कर सकता है, जिसे ब्रह्मा, आदम या चीन में फान कहा गया है।

(५) संसार में सभी एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। कई बातों में एक दूसरे पर निर्भरता दीखती है। सृष्टि की एक ही क्रिया तथा एक स्रष्टा द्वारा ही ऐसा हो सकता है। वेद में विश्व के ३ स्तरों को परस्पर सम्बन्धित माना गया है-आधिभौतिक (पृथ्वी पर दीखता है), आधिदैविक (आकाश में ज्योतिषीय पिण्ड), आध्यात्मिक (शरीर के भीतर)। इसके अनुसार मन्त्रों के ३ प्रकार के अर्थ हैं। यह प्रत्यक्षत: स्पष्ट नहीं है, पर विश्व की रचना का आधार है। एक मत से ५ प्रकार के भी अर्थ हैं (तैत्तिरीय उपनिषद्, शीक्षा वल्ली)

(६) भगवान एक ही हैं, एक व्यक्ति का भगवान दूसरे से अलग नहीं है। अत: धर्म परिवर्तन धर्म-विरुद्ध है, वह भगवान को २ कर देता है। अद्वैत का अर्थ निराकार नहीं है। इसका अर्थ है कि निराकार तथा सभी प्रकार के साकार रूपों में एक ही मूल तत्त्व है।

(७) हमारे ज्ञान का आधार है सभी शास्त्रों में समन्वय। ब्रह्मसूत्र के प्रथम ४ सूत्र हैं-अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। जन्माद्यस्य यत:। शास्त्रयोनित्वात्। तत्तु समन्वयात्।

ब्रह्म या संसार को जानने की इच्छा से ही ज्ञान होता है। ब्रह्म का अर्थ है जिससे संसार का जन्म आदि (विकास, क्षय, मरण आदि) होता है। उसका ज्ञान शास्त्र से ही सम्भव है। यहाँ यह सन्देह हो सकता है कि ध्यान या समाधि आदि विधियां क्या पर्याप्त नहीं हैं। इसका समाधान है कि कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है। शास्त्र विश्व के महान् व्यक्तियों के ज्ञान का सङ्कलन है। यह ब्रह्म का शब्द में व्यक्त रूप है। इसमें भी कई प्रकार या विरोध दीखते हैं। उनके समन्वय से ही ज्ञान होता है। इसका अर्थ है कि भौतिक विज्ञान तथा गणित में कोई विरोध नहीं है। इन दोनों से रसायन विज्ञान तथा अन्य शास्त्र समझे जा सकते हैं। सभी का माध्यम भाषा है। अत: किसी शास्त्र की उपेक्षा नहीं हो सकती।

उनका समन्वय ही वास्तविक विधि तथा साधन है।

(८) हमारे सिद्धान्तों का आधार है, एकत्व का दर्शन। हम अलग अलग वस्तुओं में समानता देखकर उनका वर्ग बनाते हैं। फिर अलग अलग वर्गों में सम्बन्ध खोजकर उनका भेद तथा सम्बन्ध देखते हैं। इसी से विज्ञान के सिद्धान्त होते हैं। इसका विशेष वर्णन द्वित्व में होगा।

(९) प्रयोग या प्राकृतिक क्रियाओं के पर्यवेक्षण से जो ज्ञान होता है, वह कई बार परस्पर विरोधी लगता है। इन सबका निष्पक्ष सिद्धान्त के अनुसार समन्वय ही सही निष्कर्ष देता है। प्राय: हम अपनी श्रेष्ठता दिखाने के लिये या पूर्वाग्रह को प्रमाणित करने के लिये अलग अलग स्थितियों में अलग अलग नियम लगाते हैं। यह ज्ञान प्राप्ति में बाधक है।

४. द्वित्व-द्वित्व या द्वैतवाद का यह अर्थ नहीं है कि ब्रह्म २ हैं। ब्रह्म एक ही है, पर उसे समझने के २ प्रकार हैं। सृष्टि का निर्माण भी २ प्रकार की क्रियाओं द्वारा हुआ। इसके कई रूप हैं-

(१) भेद-संसार का मूल एक ही प्रकार का समरूप पदार्थ है, जिसे रस कहा गया है-यद्वै तत् सुकृतं, रसो वै स:। (तैत्तिरीय उपनिषद्, २/७/२)। संसार में निर्माता, निर्माण सामग्री, स्थान आदि सभी एक ही हैं, ऐसे निर्माण को सुकृत कहा गया है। बाइबिल में इसका अनुवाद है, कि हर स्तर के बाद भगवान् ने कहा कि बहुत अच्छा निर्माण हुआ है। वह अपने को प्रमाण पत्र नहीं दे रहे थे।

(२) द्वैत रूप-यदि हर वस्तु एक ही समान हो, तो कोई सृष्टि नहीं हो सकती। कोई द्रष्टा या दृश्य नहीं होगा। भेद का आरम्भ द्वैत से हुआ। इसके कई रूप हैं-

(क) पुरुष-स्त्री-स्रष्टा ने निर्माण के लिये अपने को २ रूपों में विभक्त किया, जिसे पुरुष-प्रकृति कहा गया है। निर्माण सामग्री को प्रकृति कहा गया है। प्रकृति जन्म देने वाले के रूप में माता है। मातर् से अंग्रेजी में मैटर (matter) हुआ है। निर्माण कर्त्ता चेतन तत्त्व को पुरुष कहा गया है। इसी अर्थ में निर्माण कर्त्ता को पिता तथा निर्माण स्थान को माता कहा गया है। सूर्य किरणों से पृथ्वी पर सृष्टि हुयी, अत: सूर्य पिता है। पृथ्वी पर निर्माण हो रहा है तथा यहीं की सामग्री भी है, अत: पृथ्वी माता है। सूर्य का निर्माण ब्रह्माण्ड में हुआ, वह पितामह है। उसका निर्माता स्वयम्भू प्रपितामह है-विष्णु सहस्रनाम में एक नाम।

(ख) वृषा-योषा-जो वर्षा करता है वह वृषा या पुरुष है। ग्रहण करने वाला या युक्त

होने वाला योषा या स्त्री है। सूर्य से किरणें निकलती हैं, अतः वह पुरुष है। पृथ्वी ग्रहण करने वाली स्त्री है। चन्द्रमा भी केवल ग्रहण करता है, अतः उसे स्त्री ग्रह कहा गया है। वृहस्पति जितना ग्रहण करता है, उससे अधिक विकिरण उससे निकलता है, अतः वह पुरुष ग्रह है। पृथ्वी के निकट के ग्रहों में शुक्र अधिक तेज लेता है, अतः स्त्री ग्रह तथा मंगल कम प्रकाश लेने वाला पुरुष ग्रह है। सूर्य के बहुत निकट का बुध तथा दूर का शनि नपुंसक ग्रह हैं-इनका बहुत कम प्रकाश यहां मिलता है।

(ग) देवता-जो तत्त्व एक सीमा के भीतर है, या विन्दु रूप प्रतीक मात्र है-उसे पुरुष कहते हैं। जो एक क्षेत्र में फैला है, उसे स्त्री देवता कहते हैं। जैसे निर्माण में तीन पुरुष रूप गायत्री मन्त्र के ३ पाद हैं-स्रष्टा को ब्रह्मा, दृश्य तेज को विष्णु तथा सङ्कल्प या मन को शिव कहते है। इनके क्षेत्र रूपों को स्त्री कहा जाता है। निर्माण का मूल स्थान अन्धकारमय महाकाली है। दृश्य जगत् महालक्ष्मी (लक्ष्य = दृश्य), तथा ज्ञान का विस्तार महा-सरस्वती है।

(घ) अग्नि-सोम-एक सीमा के भीतर सघन पदार्थ या ऊर्ज्जा को अग्नि कहते है। सीमा से बाहर फैलने से उसका घनत्व कम हो जाता है-यह रूप सोम है। सौर मण्डल के सघन पिण्ड के रूप में पृथ्वी अग्नि है। ताप का भी सघन रूप अग्नि है। आकाश में तेजपुञ्ज सूर्य अग्नि है, अपेक्षाकृत कम ताप चन्द्र के पास है, जहां सृष्टि सम्भव है, अतः उसे सोम कहते हैं।

(ङ) प्राण (गतिशील शक्ति) तथा रयि (संचित शक्ति) भी इसके २ रूप हैं।

(३) सञ्चर-प्रति सञ्चर- यह सांख्य दर्शन की शब्दावली है। सञ्चर का अर्थ है गति। प्रति सञ्चर विपरीत गति है। दो प्रकार की विपरीत क्रियाओं से विश्व का कार्य चलता है। इसे २ प्रकार की नियति (परिणाम, नीयत = उद्देश्य) भी कहा गया है। अतः विश्व को द्विनियति (दुनिया) भी कहते हैं। ईशावास्योपनिषद् में इसे सम्भूति-असम्भूति कहा गया है-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः।१२।
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।१३।
सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद् वेदोभयँ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।१४।

सम्भूति निर्माण की क्रिया है, उसका विपरीत विनाश है। विनाश कार्य से लगता है कि मनुष्य अन्धकार में जाता है। पर आश्चर्य है कि सम्भूति का उपासक और घने अन्धकार में जाता है। कारण है कि कोई नया निर्माण नहीं होता, पुराना ही नये रूप में आता

है। पुराने रूप का विनाश भी सन्तुलित रूप में करना पड़ता है। उसका मोह रहने से व्यक्ति अकर्मण्य होकर अधिक अन्धकार में जाता है। विनाश का मर्म समझ कर मृत्यु तक की यात्रा पार होती है। उपयोगी निर्माण करने से मनुष्य अमर हो जाता है, पर उसके लिये दोनों का सन्तुलन जरूरी है।

(४) विद्या-अविद्या-यह दोनों विपरीत लगते हैं। समान्यतः विद्या का अर्थ ज्ञान मानते हैं। परन्तु अविद्या का अर्थ ज्ञान का अभाव या अज्ञान नहीं है। विद्या का अर्थ समन्वय या एकीकरण है। अविद्या का अर्थ है अपरा विद्या या वर्गीकरण। आज इसे ही विज्ञान कहते हैं। अमरकोष में भी कहा है-मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः।
इसे मुण्डकोपनिषद् में और स्पष्ट किया गया है-

द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।४।
तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।।५।।

अर्थात् ब्रह्मविद् २ प्रकार की विद्या कहते हैं, परा तथा अपरा। उसमें परा का विभाजन २ वेदों तथा ६ अङ्गों में हुआ। परा वह है जिससे अक्षर (अविनाशी ब्रह्म) की प्राप्ति हो, अर्थात् सबमें एकत्व का दर्शन हो।

ईशावास्योपनिषद् इन २ प्रकार की धाराओं का समन्वय कहता है-

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।६।
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः। तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः।७।

जो सभी भूतों को अपने में तथा सभी में अपने को देखता है, उसे सन्देह नहीं होता। सभी भूतों को अपने समान समजने पर कोई मोह या शोक नहीं होता, वह भेद देखनेपर भी एकत्व का बाद में अनुभव करता है। पश्यति का अर्थ है देखना-बाहर से अलग अलग दीखता है। उसके बाद तत्त्व रूप में एकत्व का अनुभव होता है। बाद की क्रिया के लिये अनु उपसर्ग है-अनुपश्यतः।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।८।।

मूल तत्त्व अव्यक्त है। उससे निर्माण के लिये कई आवरणों में घेरना (पर्यगात्) पड़ता है। निर्माता को कवि कहा गया है। वह अनन्त फैले पदार्थ को कवल (एक बार में भोजन ग्रहण करने की मात्रा-कौर) में बांट कर पदार्थ बनाता है। भाषा का कवि भी शब्दों को

छन्द (वाक्य या काव्य के छन्द-पाद) में बांट कर रचना करता है। निर्माण के कारण ये अन्तर होते हैं-

अव्यक्त मूल	व्यक्त निर्माण
शुक्र (तेज)	तम (व्यक्त वाणी में कुछ छिप जाता है)
अकाय	काया-युक्त (शरीर का आकार प्रकार)
अव्रण	व्रण (कम अधिक का भेद, घाव या क्षत)
अस्नाविर	स्नाविर (भागों में परस्पर सम्बन्ध-स्नायु सूत्र से)
शुद्ध	अशुद्ध (कई प्रकार के तत्त्वों का मिश्रण)
अपापविद्ध	पापविद्ध (कई खण्डों में बंटा, विभाजक क्षेत्र पाप है)

कवि मनीषी होने के कारण परिभू क्रिया द्वारा स्वयम्भू होता है।

अन्धं तम: प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रता:।९।

जो केवल एक प्रकार की शाखा (अविद्या) का अध्ययन करता है (तथा उससे अन्य का सम्बन्ध नहीं जानता), वह पूर्ण ज्ञान से वञ्चित अन्धकार में रहता है। उससे भी घने अन्धकार में वह है, जो केवल विद्या में रत है, अर्थात् केवल एकत्व मानता है पर किन अलग-अलग चीजों (अविद्या) का एकत्व है, यह नहीं जानता।

अन्यदेवाहुर्विद्ययादन्यदाहुरविद्यया। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे।१०।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयँ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।११।

कुछ कहते हैं कि विद्या द्वारा ज्ञान होता है। कुछ अविद्या द्वारा कहते हैं-ऐसा मैंने धीर विचारकों से सुना है। निष्कर्ष यह है कि विद्या-अविद्या दोनों का ही ज्ञान जरूरी है। अविद्या द्वारा जीवन-यापन होता है, अर्थात् मृत्यु को पार करता है। विद्या से अमर होता है।

(५) सिद्धान्त-प्रयोग- इनका समन्वय ही सभी विज्ञानों का आधार है। हम व्यवहार में जो देखते हैं, उसकी व्याख्या करने के लिये सिद्धान्त बनाते हैं। नये प्रयोगों से सिद्धान्त में जब भूल दीखती है, तब उनका संशोधन करते हैं।

(६) विकल्प-विकल्प का दर्शन कर पाना ही बुद्धिमत्ता का चिह्न है। इसे ही अनेकान्तवाद कहा गया है। गणित के कई प्रकार के निष्कर्ष हो सकते हैं। हर माप या गणना में कुछ भूल की सम्भावना रहती है। अत: हमारे निष्कर्ष के निकट वास्तविक सत्य अनन्त प्रकार के हो सकते हैं। पूर्वाग्रह या अहङ्कार के कारण हम विकल्प नहीं देख पाते हैं। विकल्प देखने की क्षमता को बुद्धिमानी तथा उसके विपरीत अविपश्चित

को मूर्ख कहा गया है-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चित:।
वेदवादरता पार्थ नान्यदस्तीतिवादिन:। (गीता २/४६)

यहां लगता है कि गीता में वेद पाठकों की निन्दा की गयी है, जबकि गीता को वेद का प्रस्थान माना जाता है। पर इसका भाव है कि जो वेद के केवल एक ही वाद को मानते हैं तथा दूसरे का विरोध करते हैं, वे विकल्प देखने में असमर्थ या मूर्ख हैं।

५. त्रित्व-गायत्री छन्द में अर्थ के लिये ३ पाद हैं। सृष्टि का निर्माण भी प्रकृति के ३ गुणों द्वारा हुआ। ३ प्रकार से ज्ञान प्राप्ति कही गयी है, उनका प्रयोग भी ३ प्रकार से होता है। ज्ञान प्राप्ति में ३ तत्त्व हैं-ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता। कर्म भी ३ कारण से है-ज्ञान, कर्म, कर्त्ता। गीता में इनका वर्णन है-

प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै: कर्माणि सर्वश:।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते। (३/२७)

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभि: सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्। (७/१३)

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्त्तेति त्रिविध: कर्म संग्रह:। (१८/१८)

ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदत:।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।(१८/१९)

कर्मों का फल भी ३ प्रकार का है-

अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविध: कर्मण: फलम्। (१८/१२)

ईशावास्योपनिषद् में विद्या-अविद्या व्याख्या के अनुरूप ३ प्रकार के ज्ञान गीता में कहे गये हैं-सात्त्विक, राजस तथा तामसिक-

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्। (१८/२०)

पृथक्त्वेनं तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।।(१८/२१)

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामससमुदाहृतम्।(१८/२२)

योग दर्शन में भी ३ प्रमाण कहे गये हैं-प्रत्यक्षानुमानागमा: प्रमाणानि (१/१/७)

न्याय दर्शन में अनुमान तथा उपमान को मिला कर ४ प्रमाण कहे गये हैं-
प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि (१/१/३)

वेद को शब्द तथा आगम कहा गया है। आगम का अर्थ है यह प्रकृति या परिवेश से प्राप्त होता है। शब्द का अर्थ है कि शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध, इन ५ माध्यमों से ज्ञान होता है। ये ५ ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। इसी अर्थ में वेद को श्रुति भी कहा गया है। गणित में भी तुलना ३ प्रकार से की जाती है-कम, बराबर, अधिक। प्रत्यक्ष का अर्थ वास्तविक अनुभव है। शब्द या श्रुति के अर्थ के अनुसार वेद केवल यही होना चाहिये था। पर यह वेद के ज्ञान प्राप्त करने का आरम्भ मात्र है। वेद में आध्यात्मिक, आधिदैविक, तथा अधिभौतिक विश्वों में क्रियाओं का समन्वय समझने पर ही पूर्ण ज्ञान होता है जिसे हम वेद कहते हैं। अतः कोई सिद्धान्त तभी सब प्रकार से सत्य होगा जब वह ३ विश्वों में सत्य हो, यही वेद प्रामाण्य है। वेदादि भाष्य भूमिका में सायण के उद्धरण का यही अर्थ है-
प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते। एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता।
शब्दिक तर्क में ३ प्रकार के निर्णय हैं-सत्य, असत्य, स्यात् (शायद)। इन ३ को मिलाकर जैन-दर्शन में ७ प्रकार के निर्णय किये जाते हैं। अतः इसे सप्तभङ्गी न्याय कहते हैं। ३ तथा ७ प्रकार के सत्य का उल्लेख वेद के प्रथम सूक्त में है-
ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वाः। (अथर्व १/१/१)
यही पुरुष सूक्त तथा भागवत पुराण में भगवान कृष्ण की स्तुति में व्यक्त किया गया है-
सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः (पुरुष सूक्त १५, यजुर्वेद ३१/१५)
सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यं ऋतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः।(भागवत पुराण १०/२/२६)

६. चतुष्पाद ज्ञान-हमारा संसार की प्रत्येक वस्तु का ज्ञान ४ रूपों में है, जिसे चतुष्पाद पुरुष कहते हैं-
(१) क्षर पुरुष-सभी पिण्डों का बाहरी स्वरूप धीरे धीरे नष्ट होता रहता है, उसे क्षर पुरुष कहते हैं। क्षरण =नष्ट होना।
(२) अक्षर पुरुष-हर क्षण पिण्ड का कुछ भाग नष्ट होने पर भी उसका कार्य रूप में परिचय बना रहता है जब तक वह वस्तु बनी रहती है। यह छिपा रहता है अतः इसे कूटस्थ कहते हैं। कूट का अर्थ पर्वत की चोटी भी है, जिससे पर्वत का नाम या परिचय होता है। अतः पिण्ड या व्यक्ति का नाम रूप में परिचय अपेक्षाकृत स्थायी है। यही

अक्षर पुरुष है।
(३) अव्यय पुरुष-किसी व्यक्ति या पिण्ड का निर्माण, विकास, क्षय या विनाश यदि परिवेश के भीतर देखें तो कुछ भी अन्तर नहीं होता। पिण्ड में जो बढ़ता है वह बाहर कम हो जाता है। पिण्ड में जो कम होता है उतना बाहर बढ़ जाता है। कुल मिलाकर कुछ भी व्यय नहीं होता है। अतः परिवेश के अंश रूप में हर पिण्ड अव्यय पुरुष है। किसी पिण्ड के परिवर्तन का क्रम भी अव्यय है जिसे विपरीत वृक्ष के रूप में अव्यय कहा गया है। इसमें छन्द या सीमा बद्ध पदार्थ पत्ते के समान क्षणभङ्गुर है-
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।
(गीता १५/१, योगशिखोपनिषद् ६/१४)
(४) परात्पर पुरुष-मूल स्तर पर किसी पिण्ड या ब्रह्माण्ड में कोई भेद नहीं है। यह अवस्था परात्पर पुरुष है। इसमें भेद नहीं होने से इसका कोई वर्णन नहीं है।
अन्य ३ की परिभाषा गीता (१५/१५-१७) में है-
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।
= संसार में २ प्रकार के पुरुष हैं-क्षर तथा अक्षर। सभी भूत क्षर हैं तथा उनका छिपा हुआ परिचय अक्षर है। सर्वोच्च पुरुष अलग है तथा उसे परमात्मा कहते हैं, जो ३ लोकों में प्रवेश कर उनका भरण करता है। वह अव्यय (नष्ट नहीं होने वाला) तथा ईश्वर (सबका नियन्ता) है। क्षर से परे तथा अक्षर से भी उत्तम होने के कारण मैं (श्रीकृष्ण भगवान्) लोक (साहित्य) तथा वेद (विज्ञान) दोनों में पुरुषोत्तम के रूप में प्रथित हूँ।
स्थूल रूप का ज्ञान होने के बाद क्रमशः उसके सूक्ष्म ३ स्तरों का ज्ञान होता है-
पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। (पुरुष सूक्त २)
कुछ उदाहरण-
(१) मनुष्य- (क) क्षर-मनुष्य का बाहरी रूप प्रति क्षण बदलता है, यह क्षर पुरुष है। यहां पुरुष का अर्थ स्त्री भी है।
(२) अक्षर-प्रति क्षण बदलने पर भी हम अपने को जन्म से मरण तक वही व्यक्ति मानते हैं। दूसरों के लिये भी हमारा नाम रूप में वही परिचय बना रहता है।
(ग) अव्यय-यह कई रूपों में देखा जा सकता है। जन्म से लेकर मरण तक हमारे

परिवर्तन का क्रम अव्यय है क्योंकि परिवेश के अङ्ग के रूप में उसमें कोई अन्तर नहीं होता। हमारे इस जन्म का परिचय क्षर है, सभी जन्मों का परिचय अव्यय है। आकाश में पदार्थ का विस्तार समुद्र है, उसमें स्थानीय उपलब्ध पदार्थ दारु (काठ) का टुकड़ा है, जिससे पिण्ड का निर्माण होता है। सभी भूतों के स्वरूप जगन्नाथ भी इसी कारण दारु ब्रह्म हैं-

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्।
तदारभस्व दुर्हणो येन गच्छ परस्तरम्। (ऋक् १०/१५५/३)

(घ) परात्पर-जिस स्तर पर मनुष्य, पशु, निर्जीव या आकाश में कोई अन्तर नहीं है, वह परात्पर है, क्योंकि वह सभी वर्णनों से परे है। या अव्यय पुरुष क्षर-अक्षर के परे होने के कारण पर है। उससे भी परे होने के कारण यह परात्पर है।

(२) वृक्ष-(क) क्षर-वृक्ष की रचना क्षर पुरुष है।

(ख) अक्षर-जन्म से मरण तक वृक्ष की स्थिति अक्षर पुरुष है।

(ग) अव्यय-परिवेश से जल, वायु तथा मिट्टी के तत्त्व ग्रहण करना तथा पत्ता, फल-फूल, काठ आदि का उत्पादन अव्यय पुरुष है।

(घ) परात्पर-यह सभी के लिये समान या भेदरहित है।

(३) नदी-(क) क्षर-नदी की धारा तथा जल। धारा की दिशा तथा जल की मात्रा हमेशा घटती बढ़ती रहती है।

(ख) अक्षर-नदी की धारा बदले या जल बिलकुल सूख जाय, उस नदी का नाम वही रहता है।

(ग) अव्यय-समुद्र से वर्षा, वर्षा का जल जमीन के विभिन्न स्रोतों से होकर नदी में मिलना, तथा नदी का समुद में मिलना-यह चक्र अव्यय पुरुष है।

(घ) परात्पर-सभी के लिये एक ही है।

चार वेद-त्रयी का अर्थ ४ वेद होता है। इसका प्रतीक पलाश है, जिसकी शाखा से ३ पत्ते निकलते हैं। अतः वेदारम्भ संस्कार (यज्ञोपवीत) में प्रतीक रूप में इसका प्रयोग होता है। मूल अथर्ववेद के मूर्त्ति-गति-महिमा रूपी ऋक्-यजु-साम वेदों में विभाजन के बाद मूल नष्ट नहीं होता। इन सभी को विराट् के सन्दर्भ में ही देखा जा सकता है। मूर्त्ति का बोध इसलिये होता है कि वह परिवेश से भिन्न है। गति भी अपने सन्दर्भ के सापेक्ष होती है। इसी प्रकार किसी पदार्थ का प्रभाव क्षेत्र पूर्ववर्त्ती क्षेत्र में अन्तर पैदा करता है। विराट् या पूर्णता के सन्दर्भ में ही कोई ज्ञान हो सकता है। ४ वेदों की उत्पत्ति का वर्णन

मुण्डकोपनिषद् में तथा वेद विभाजन के ४० प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण में हैं।

ब्रह्मा देवानां प्रथमं सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भरद्वाजाय सत्यवहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्।।
द्वे विद्ये वेदितव्ये-... परा चैव, अपरा च। तत्र अपरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदोऽथर्ववेदः, शिक्षा, कल्पो, व्याकरणं, निरुक्तं, छन्दो, ज्योतिषमिति। अथ परा-यया तदक्षरमधिगम्यते।
(मुण्डक उपनिषद् १/१/१,२,४,५)

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुः, सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजं सामरूप्यं ह शश्वत्, सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण ३/१२/८/१)
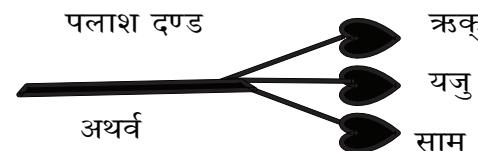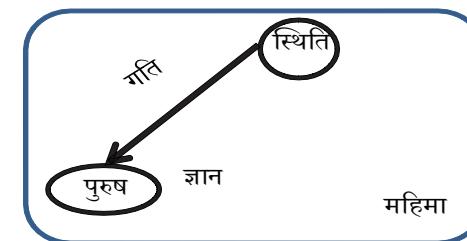
इसी के अनुरूप विद् धातु के ४ अर्थ हैं-

ऋक्	मूर्त्ति	विद् सत्तायाम् (पाणिनीय धातु पाठ ४/६०)
यजु	गति	विद्लृ लाभौ (६/१४१)
साम	ज्ञान	विद् ज्ञाने (२/५७)
अथर्व	सर्व	विद् चेतनाख्यान निवासेषु (१०/१७७), विद् विचारणे (७/१३)

८. पञ्च पर्व-विश्व की रचना ५ पर्वों में है। अतः ५ या ५ × ५ प्रकार के यज्ञ

होते हैं। इनका विद्या से सम्बन्ध बताने वाले सांख्य तत्त्व समास के सूत्र हैं-
८-पञ्चाभिबुद्धय:। ९-पञ्च दृग्योनय:। १०-पञ्चवायव:। ११-पञ्चकर्मात्मान:। १२-पञ्चपर्वा अविद्या।
अभिबुद्धि का अर्थ बुद्धि की वृत्ति या क्रिया है। इनकी योग सूत्रों में व्याख्या है-
योग का अर्थ ही चित्तवृत्ति का निरोध है-योगश्चित्तवृत्ति निरोध: (१/२)
वृत्तय: पञ्चतय्य: क्लिष्टाक्लिष्टा:(१/५)-सभी ५ वृत्तियां क्लिष्ट या अक्लिष्ट हो सकती हैं। ये ५ वृत्ति हैं-
प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतय:(१/६)
प्रमाण ३ हैं-प्रत्यक्षानुमानागमा: प्रमाणानि (१/७)
विपर्यय का अर्थ मिथ्या ज्ञान है जो पदार्थ को उसके प्रतिष्ठित रूप में नहीं देखता है-
विपर्ययोमिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम्। (१/८)
विकल्प का अर्थ शब्दजाल है जिसका कोई स्पष्ट अर्थ नहीं है-
शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्प:(१/९)
विचारों तथा ज्ञान का सहज अभाव निद्रा है-
अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। (१/१०)
पुराने अनुभव किये गये विषयों का पुन: विचार स्मृति है-
अनुभूत विषयासम्प्रमोष: स्मृति:।(१/११)
दृग्योनि का अर्थ दर्शन के लिये अङ्ग मिलाकर ५ ज्ञानेन्द्रिय है।
वायु का अर्थ गति या क्रिया है, ५ प्रकार से ज्ञान या सूचना की गति हो सकती है।
कर्मात्मा का अर्थ ५ कर्मेन्द्रिय हैं, कर्म के समन्वय से ही ज्ञान होता है।
अविद्या के ५ पर्व हैं। इन्हें योगसूत्र (२/३) में क्लेष कहा गया है-
अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा: क्लेषा:।
वास्तविक ज्ञान का अभाव होने से क्रमश: ५ प्रकार के कष्ट होते हैं-अज्ञान, अहङ्कार, मोह, द्वेष तथा किसी सिद्धान्त के प्रति जड़ता।
मन के भीतर ये अवस्थायें होने से कष्ट होता है। पर भौतिक जगत् में क्रियाओं का अध्ययन अविद्या का अर्थ अपरा विद्या अर्थात् विज्ञान मानने पर यह विज्ञान के सिद्धान्त निर्धारित करने के ५ क्रम हैं-
१. अविद्या-विषयों या तथ्यों का विभाजन।
२. अस्मिता-प्रति तत्त्व की अलग अलग परिभाषा तथा व्याख्या।

३. राग-अलग-अलग तथ्यों में समानता खोज कर उन्हें एक वर्ग में करना (Generalization)
४. द्वेष-अन्य वर्ग के तथ्यों से भेद दिखाना।
५. अभिनिवेश-सिद्धान्त स्थिर करना जिसके अनुसार नये तथ्यों को प्रमाणित या अप्रमाणित किया जा सकता है।

९. षड् दर्शन-सम्पूर्ण को एक साथ देखना दर्शन है। इसके ६ प्रकार हैं, अत: ६ दर्शन तथा ६ दर्श-वाक् (लिपि) हैं। वेद में विश्व के १० आयाम माने गये हैं। उनमें ५ आयाम यान्त्रिक विश्व का वर्णन करते हैं, इनके कारण ५ प्रकार की मूल इकाइयों से माप की जा सकती है। उसके बाद चेतना के ५ स्तर हैं, जो ऊपर बताये गये अभिबुद्धि के रूप कहे जा सकते हैं। अत: ६ प्रकार के दर्शन हैं। आयाम संख्या के अनुसार दर्शन के तत्त्व या लिपि के अक्षर होंगे। हमारा ज्ञान लिपि द्वारा भाषा में ही व्यक्त होता है। इनकी संख्या का उल्लेख अस्यवामीय सूक्त में है-
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।
(ऋग्वेद १/१६४/४१, अथर्व ९/१०/२१, १३/१/४२, तैत्तिरीय ब्राह्मण २/४/६/११, तैत्तिरीय आरण्यक १/९/४, निरुक्त ११/४०)
अविभक्त गौरी वाक् आकाश के मूल स्वरूप या मन की मूल अवस्था में थी। समरूप रस में तरङ्गों द्वारा विभाजन होने से कई प्रकार के खण्ड हुये-१, २, ४, ८, ९, १०००। इनके अनुसार ६ दर्शनों के तत्त्व या लिपियों की अक्षर संख्या हुयी-
सांख्य-$(१+४)^२$= २५, रोमन लिपि के अक्षर।
शैव-$(२+४)^२$=३६- लैटिन, अरबी, रूसी, गुरुमुखी के अक्षर (३५)।
मरुत् = $(१+२+४)^२$=४९। देवनागरी के अक्षर।
कला = $८^२$ = ६४= ब्राह्मी लिपि के अक्षर।
वेद की विज्ञान वाक् = $(८+९)^२$ = २८९, ३६ × ३ स्वर, ३६ × ५ व्यञ्जन, १ अविभाज्य ॐ।
साहस्री वाक् = व्योम (तिब्बत = त्रिविष्टप) के परे चीन तथा जापान में।

१०. महाविद्या-१० आयामों के कारण १० महाविद्या हैं। इनके कई मूल कहे गये हैं, जिनका उल्लेख सांख्य सिद्धान्त आदि पुस्तकों में है। ये हैं-
(१) ३ क्रियात्मक लोक +७ संरचनात्मक लोक, (२) आकाश के ३ आयाम तथा ७

ऋषि या ७ प्राणों के ७ आयाम। या ५-५ आयाम २ प्रकार के हैं-(१) सतत तथा कण समूह, (२) अनन्त रैखिक या सीमित गोलीय या बेलनाकार। इनका रूप है-

५ सतत या अनन्त |
१. रेखा (गति दिशा)
२. पृष्ठ (सतह)
३. आयतन (स्तोम, आयु) | आकाश के ३ आयाम
४. पदार्थ-चतुर्मुख ब्रह्मा-सापेक्षवाद में आकाश-काल का परिणाम
५. काल-पञ्चमुख शिव-महाकाल स्वरूप

५ सीमित या कण-समूह |
६. चेतना-जो चयन या चिति करे-चेतन पुरुष-षष्ठ आयाम
७. ऋषि(=रस्सी, असत् प्राण की बल रेखा)-सप्तम आयाम
८. नाग (वृत्र)-स्थानीय घूर्णन बल, अनन्त ऊर्जा को सीमित करे।
९. रन्ध्र (नन्द)-छिद्र-असम घनत्व के कारण निर्माण
१०. आनन्द (रस)-सृष्टि का मूल रूप, पदार्थ/उर्जा स्तर के अनुसार घनत्व में अन्तर

१० आयामों के अनुसार नासदीय सूक्त में १० वादों का उल्लेख किया गया है जिसकी व्याख्या मधुसूदन ओझा ने की है तथा सारांश सांख्य-सिद्धान्त में है।

१० आयामों के कारण संस्कृत में दश, दशा, दिशा के प्राय: समान अर्थ है। १० महाविद्या भी इसी कारण हैं।

सृष्टि रचना के ९ सर्ग कहे गये हैं। भागवत पुराण में अव्यक्त को मिलाकर १० सर्ग हैं। ९ सर्गों का निर्माण चक्र ९ प्रकार के कालमान हैं। निर्माण के पूर्व का फैला हुआ पदार्थ जल है तथा उसका क्षेत्र समुद्र है। निर्माण के बाद सीमाबद्ध पिण्ड भूमि है। दोनों का मध्यवर्त्ती निर्माणाधीन रूप वराह है, जो जल-स्थल दोनों का जीव है। आकाश में वराह का अर्थ मेघ है, जो वायु (गैस) तथा जल (द्रव) का मिश्रण है। अत: बाइबिल में ९ प्रकार के मेघ कहे गये हैं। इनके कुछ मुख्य उद्धरण हैं-

अव्यक्ताद् व्यक्तय: सर्वे प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।(गीता ८/१८)

ब्राह्मं पित्र्यं तथा दिव्यं प्राजापत्यं च गौरवम्।
सौरं सावनं चान्द्रमार्क्षं मानानि वै नव।। (सूर्य सिद्धान्त १४/१)

विष्णु पुराण (१/५/१९-२५) के ९ सर्ग हैं-

प्राकृत-१. महत्तत्व, २ तन्मात्रा, ३. वैकारिक (इन्द्रिय सम्बन्धी)।

वैकृत-४. मुख्य (पर्वत वृक्ष आदि स्थावर), ५. तिर्यक् स्रोत (कीट पतङ्ग आदि), ६. ऊर्ध्व स्रोत (देवसर्ग), ७. अर्वाक् स्रोत (मनुष्य सर्ग), ८. अनुग्रह सर्ग (सात्विक और तामसिक)।

प्राकृत तथा वैकृत-९. कौमार सर्ग।

वराहो मेघो भवति, वराहार:-यास्क का निरुक्त, (१/१०)।

स प्रजापति-वै वराहो रूपं कृत्वा उपन्यमज्जत्(तैत्तिरीय ब्रा.१/१/३/६)

महाविद्या महर् की विद्या है, अर्थात् यह पुरुष से ग्रहण करता है। पुरुष जो ग्रहण करता है वह विद्या, उसका प्रयोग महाविद्या। प्रायोगिक ज्ञान के लिये १० प्रकार की भहाविद्या साधना करनी पड़ती है। इनमे ५ विपरीत तत्त्वों की जोड़ी कही जाती है- १. काली-बगलामुखी, २. तारा-कमला, ३, त्रिपुरसुन्दरी-त्रिपुरभैरवी, ४. भुवनेश्वरी-धूमावती, ५. छिन्नमस्ता-मातङ्गी।

महाविद्याओं के प्रतीकात्मक गुण कहे गये हैं-

१. काली-प्रचण्ड शक्ति। २. तारा-शब्द शक्ति। ३. त्रिपुर सुन्दरी-सौन्दर्य, आनन्द। ४. भुवनेश्वरी-द्रष्टा शक्ति। ५. छिन्नमस्ता-संहार, मारण। ६. धूमावती-मूढ अवस्था। ७. बगलामुखी-स्तम्भन शक्ति। ८. कमला-संयम शक्ति। ९. मातङ्गी-क्रीड़ा शक्ति। १०. भैरवी-पुण्य शक्ति।

११. विविध भेद-भागवत पुराण में ज्ञान के कई भेदों की चर्चा है-

नवैकादश पञ्च त्रीन् भावान् भूतेषु येन वै। ईक्षेताथैकमप्येषु तज्ज्ञानं मम निश्चितम्।
एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत्। स्थित्युत्पत्तिलयान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम्।१५।
(श्रीमद् भागवत पुराण ११/१९/१४-१५)

प्रचलित व्याख्या-जगत् के अनन्त पदार्थों का ९, ११, ५, ३ के रूप में वर्गीकरण करना (न्याय वैशेषिक में ९ द्रव्य, बौद्ध दर्शन में ५ स्कन्ध, सांख्य में ३ गुण, जैन दर्शन में पञ्चास्तिकाय, प्रत्यभिज्ञा दर्शन में प्रकृति पुरुष के ऊपर के ११ मूल तत्त्व) और अन्त में एक ही मूल तत्त्व को अनुगत देखना-यह प्रक्रिया ज्ञान कहलाती है। इसे ही विज्ञान भी कहते हैं। वहां विपरीत प्रकार से एक ही मूल तत्त्व से सब की उत्पत्ति, उसी में स्थिति, तथा अन्त में उसमें लय देखना विज्ञान है।

अध्याय ५
गायत्री तन्त्र

१. भूमिका-गायत्री तन्त्र की परम्परा महर्षि विश्वामित्र से आधुनिक युग में आचार्य श्रीराम शर्मा तक अविच्छिन्न चली आ रही है। यहां तन्त्र की व्यावहारिक विधियों की व्याख्या नहीं है। उसके लिये गुरु के पास जाकर विस्तार से प्रक्रिया सीखनी पड़ेगी। उद्देश्य के अनुसार विधियां बदलेंगी। यहां केवल संक्षेप में परिचय दिया जा रहा है।

२. मनोजवित्व सिद्धि-ऋग्वेद (१०/७१/७,८) में आङ्गिरस बृहस्पति के ज्ञान सूक्त के प्रसङ्ग में मनोजव का वर्णन है। ईशावास्योपनिषद् (काण्व तथा वाजसनेयी यजुर्वेद का ४०वां अध्याय) श्लोक ४ में भी मनोजव द्वारा अप् में मातरिश्वा का उल्लेख है। पतञ्जलि ने योगसूत्र ३/४८ में इस सिद्धि का वर्णन किया है जो पूर्ववर्त्ती सूत्र के आधार पर है। वैदिक वृषाकपि के रूप हनुमान में भी मनोजव तथा मारुत समान वेग का वर्णन है। अतः मनोजव से ही मारुतवेग तथा मातरिश्वा होता है। वैशेषिक दर्शन में मन को एक पदार्थ मान कर उसके परमाणु की चर्चा है। पहले मन को जानने के लिये मन, बुद्धि, अहङ्कार, चित्त की परिभाषा तथा मन के प्रायः पर्यायवाची शब्दों का अन्तर जानना होगा। उसके बाद इन्द्रिय-जय द्वारा मनोजवित्व तथा वेद के धी योग के साथ उसका सम्बन्ध स्पष्ट होगा।

३. मन की परिभाषा-शाब्दिक वर्णनों के आधार पर मन के तीन रूप दीखते हैं-
(१) गणेश रूप-कणों की संहति की गणना की जा सकती है। उनका प्रभाव क्षेत्र गणेश है।
(२) सरस्वती रूप-कणों का कुल स्थान तथा उनके बीच का भी स्थान मन का प्रभाव क्षेत्र है। यह रस रूप सर्वत्र समान है, अतः इसे रसवती या सरस्वती कहते हैं।
(३) परमाणु रूप-पदार्थ रूप में परमाणु उनके कण हैं। रस रूप में उनकी लहर या कणों का कम्पन उसकी वृत्ति है। सबसे छोटी वृत्ति ही मन का परमाणु है।

४. मन-बुद्धि-अहङ्कार-इन्द्रियों को विषय में रमने वाला घोड़ा कहा है, उन्हें नियन्त्रित करने वाल मन है। ज्ञानेन्द्रिय से मन को सूचना मिलती है, मन के आदेश से कर्मेन्द्रिय काम करती हैं। मन स्वयं निर्णय करने में सक्षम नहीं है, वह साधन मात्र है, जैसे घोड़े के लिये लगाम। इसे चलाने वाला सारथि रूप में बुद्धि है। बुद्धि को किस काम में लगाना है यह आदेश आत्मा देता है, जो परम तत्त्व परात्पर पुरुष का ही माया

द्वारा अवच्छिन्न अंश है। उसका व्यक्तिगत रूप अहङ्कार के रूप में दीखता है, शरीर का प्रत्येक कोष जानता है कि वह किस शरीर का अंश है, दूसरे शरीर के कोष,रक्त कणों को वह अस्वीकार कर देता है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।३।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।४।(कठोपनिषद् १/३)
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते। एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम्।४०।
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तु सः।४२।(गीता, अध्याय ३)

चित्त की परिभाषा देना कठिन है। यह अन्तःकरण कहा गया है, इसकी वृत्तियों का नियन्त्रण किया जाता है, तथा यह शरीर से बाहर घूमता है -योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः(योगसूत्र १/२)। देशबन्धश्चित्तस्य धारणा (योगसूत्र ३/१)हृदये चित्तसंवित्(योगसूत्र३/३४)। बन्धकारण शैथिल्यात् प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः(योगसूत्र३/३८)। यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते। (गीता. ६/१८) योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मन(गीता. ६/१९)
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया(गीता. ६/२०)। अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्(गीता. १२/९)।
इनसे चित्त की परिभाषा है-तीन अन्तःकरणों मन-बुद्धि-अहङ्कार के मिलित रूप का वह खण्ड जिस पर ध्यान-धारणा-समाधि की जाती है तथा वह शरीर के बाहर भी जा सकता है।

५. साधना क्रम- बाह्य अर्थों की व्याख्या के बाद आन्तरिक साधना का क्रम समझा जा सकता है। शरीर में साधना मूलाधार चक्र से आरम्भ होती है, जिसकी बाधा गणेश करते हैं। उसके बाद मेरुदण्ड में केन्द्रीय नाड़ी सुषुम्ना (सरस्वती) से होकर चेतना का उत्थान होता है। पुनः आज्ञा चक्र के बाद गुरु रूप गणेश की गुहा पार करनी पड़ती है। मस्तिष्क का केन्द्र भाग का आकार गणेश के सिर जैसा है। उससे हाथी की सूंढ़ के समान सुषुम्ना नीचे लटकी है। भूमि तत्त्व या अन्नमय कोष से क्रमशः सूक्षमतत्त्वों तक पहुंचते हुये आज्ञा चक्र तक पहुंचते हैं। इस प्रसङ्ग में पुरुष सूक्त के दो सूक्तों पर विचार करें-

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति(२)
=अमृत तत्त्व का स्वामी (परम-) पुरुष तक अन्नमय कोष से आरम्भ कर पहुंचा जा सकता है।
यज्ञेन यज्ञमजयन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याःसन्ति देवाः(१६)
देव यज्ञ द्वारा यज्ञ की ही उपासना करते थे। वे महिमा के सञ्चय नाक को प्राप्त करते हैं, जहां देवों के पूर्व साध्य थे। इसके ३ अर्थ हैं-
१.आधिज्यौतिष-सूर्य के तेज के क्रमशः कम होते क्षेत्र में ३३ अहर्गण के धामों में ३३ देव हैं। सौर मण्डल के निर्माण के पूर्व ब्रह्माण्ड की प्राण शक्तियां साध्य रूप में थीं। उनके यज्ञ (सृष्टि -क्रिया) से सौर मण्डल बना जिस गोले का शीर्ष विन्दु नाक कहलाता है। सूर्य से आरम्भ कर यह उसके महिमा क्षेत्रों का समूह है।
२.आधिभौतिक-देव युग से पूर्व साध्य यज्ञ द्वारा यज्ञ की उपासना करते थे। (एक उत्पादन चक्र दूसरे का आधार है)। इससे उनकी महिमा (ज्ञान-विज्ञान-सभ्यता) उच्च शिखर पर पहुंची थी।
३.आध्यात्मिक-शरीर के शीर्षस्थ सहस्रार चक्र तक पहुंचने के लिये देवता रूप चक्रों की साधना की जाती है। अन्नमय शरीर का यज्ञ प्राणमय शरीर को, प्राणमय कोष का यज्ञ मनोमय कोष में अर्पित या लीन होता है। अन्ततः नाक (आज्ञा चक्र तक यज्ञ क्रम से पहुंचने पर परम तत्त्व में शरणागति होती है।
दूर्वादान का मन्त्र-काण्डाकाण्डात्प्ररोहन्ति परुषः परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च।(वा.यजु.१३/२०)
प्रजापति का प्राण-खण्ड धूर्वा है (शतपथ. ७/४/२/१,११;७/४/२/१२), उसको परोक्ष में दूर्वा कहते हैं। दूर्वा प्रति गांठ से अंकुरित होकर बढ़ती है, उसी प्रकार मनुष्य भी मेरुदण्ड के गांठ प्रति चक्र के द्वारा ऊपर उठता है।(भौतिक अर्थ) प्रति पर्व(जन्म, विद्या, विवाह, जीविका आदि) से जीवन का नया क्रम आरम्भ होता है। प्रत्येक पर्व से ऊपर उठना है।(ज्योतिषीय अर्थ) सृष्टि क्रम में स्वायम्भुव, परमेष्ठी, सौर, चान्द्र, पृथिवी-ये ५ पर्व हुये जिनका प्रतिरूप मनुष्य शरीर तथा विश्व है । संहार (लय) क्रम में शरीर के मूल रूप विपरीत क्रम में पृथिवी से १-१ पर्व होकर ऊपर उठते हैं। प्रेतात्मा पहले पृथ्वी पर घूमता है (दश गात्र तक), फिर १३ चान्द्र परिक्रमा में चन्द्र पृष्ठ तक जाता है(प्रज्ञानात्मा-कौषीतकि ब्रा.)-मासिक श्राद्ध। वहां सौर मण्डल का प्रतिरूप

विज्ञानात्मा पृथ्वी के साथ वार्षिक गति में घूमता है (वार्षिक श्राद्ध) फिर ब्रह्माण्ड का अंश महानात्मा सौर मण्डल को पार करता है (आङ्गिरस प्रभाव-ऐतरेय ब्रा.१८/३/१७, तैत्तिरीय ब्रा.२/२/३/५-६) १ कल्प के बाद वे महर्लोक पहुंचते हैं (विष्णु पुराण.२/७/१२-कुरान के अनुसार सौरपृथिवी में कयामत तक रहते हैं)।

६. पातञ्जल सूत्रों का तात्पर्य-

ग्रहण स्वरूपास्मितान्वयार्थवत्वसंयमादिन्द्रिय जयः(३/४७)
=ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्त्व में संयम से इन्द्रिय जय होता है।
ग्रहण-इन्द्रियों की विषय ग्रहण करने की प्रवृत्ति ग्रहण है। स्वरूप-इन्द्रियों के अपने अपने धर्म, जैसे नेत्र का धर्म देखना, आदि इन्द्रियों का स्वरूप है। अस्मिता-मैं-पना, अहङ्कार। अन्वय-तीनों गुण सत्व-तम-रज जो अपने धर्मों प्रकाश, क्रिया, स्थिति से इन्द्रियों को प्रभावित करते हैं। अर्थवत्त्व-पुरुष को भोग तथा अपवर्ग देना इसका प्रयोजन है।
ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च (३/४८)।
= इन्द्रियजय से मनोजवित्व (शरीर का मन के समान गतिशील होना), विकरण भाव (बिना शरीर के वृत्ति लाभ), प्रधान जय (मूल प्रकृति का भी जय) होता है।
यह अर्थ स्वामी शिवोम् तीर्थ के अनुसार है। प्रायः ऐसा ही अर्थ व्यास भाष्य के अनुसार स्वामी ओमानन्द तीर्थ ने किया है। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ साधक को ही स्पष्ट होगा। इनका अभिप्राय यह लगता है कि विषयों के सम्बन्ध के कारण शरीर तथा उसकी इन्द्रियां एक स्थान पर बद्ध हैं, इन्हें विषयों के ग्रहण से मुक्त करने पर शरीर मुक्त होकर मन के समान विचरण कर सकता है। मन की गति क्या है, इसके बारे में कई कल्पनायें- कुछ व्यक्ति इसकी गति प्रकाश से २ गुणी मानते हैं। इसकी माप या सैद्धान्तिक आधार नहीं है। ऋग्वेद के सम्बन्धित सूक्तों का भाव भी प्रायः यही है-
अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उपकक्षास उत्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृषे।
ह्रदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्तु त्वे।(ऋक्१०/७१/७,८)
यहां भी यही अर्थ होना चाहिये कि आंख, कान के विषयों से युक्त रहने पर वह मनोजव के समान नहीं हो सकता। इन मित्रों (इन्द्रिय, विषय, उनका बन्धन) आदि का हृदय में संयम करने पर मनोजवित्व होता है।

धी योग-गायत्री का उद्देश्य है-धीमहि=धारणा+ध्यान+समाधि-इनका अभ्यास ही धी योग है-भर्गो देवस्य धीमहि।(ऋक् ३/६२/१०,साम १४६२,वा.यजु.३/३५,२२/९,३०/२,३६/३, तैत्तिरीय सं १/५/६/४,४/१/११/१, तै.आ. १/११/२)
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगसिन्वति।।(ऋक्.१/१८/७)
तां योगमिति मन्यते स्थिरमिन्द्रियधारणाम् (कठोप.२/३/११)
इसकी साधना आन्तरिक धी इन्द्रिय से होती है-
देवं नरं सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः। नमस्यन्ति धियेषिताः(ऋक्.३/६२/१२)
उपत्वाऽग्नेदिवे दिवे दोषावस्तर्धिया वयम्। नमो भरन्त एमसि।।(ऋक्.१/१/७)
इसे गीता (४/२८) में ज्ञान-यज्ञ कहा है। ऋग्वेद (१०/७१) का भी विनियोग ज्ञान ही है।

७. सारांश-इन सब का निष्कर्ष आदि शङ्कराचार्य ने सौन्दर्य-लहरी , श्लोक ९ में दिया है-

महीं मूलाधारे कमपि मणिपूरे हुतवहं, स्थितं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाकाशमुपरि।
मनोऽपि भ्रूमध्ये सकलमपि भित्वा कुलपथं, सहस्रारे पद्मे सह रहसि पत्या विहरसि(से)।।
=(आदि शक्ति कुण्डलिनी रूप में) मूलाधार में पृथ्वी रूप में स्थित है। मणिपूर में जल रूप, तब स्वाधिष्ठान में अग्निरूप, हृदय में मरुत् तथा उसके ऊपर (विशुद्धि चक्रमें) आकाश रूप में है। कुलपथ (मेरुदण्ड की केन्द्र नाड़ी सरस्वती रूपी सुषुम्ना) को भेदते हुये यह भ्रूमध्य के पीछे (आज्ञा चक्र) पहुंचती है। उसके बाद वह सहस्रार में पति (परम पुरुष) के साथ विहार करती है।

(माहेश्वर सूत्र के अनुसार)

सृष्टि क्रम	ब्रह्माण्ड के स्तर	देवता	तत्त्व	स्वर-वर्ण	सवर्ण अन्तःस्थ	शरीर के चक्र
१. अव्यक्त	परात्पर	पुरुष	(शून्य रस)	ॐ	ॐ	सहस्रार
२. श्वोवसीयस	मन	परमेश्वर(पुरुष+प्रकृति)	रस+बल	ॐ	हं+क्षं	आज्ञा
३. स्वयम्भू	(१ खर्व ब्रह्माण्ड)	ब्रह्मा	आकाश	अ	ह	विशुद्धि
४. परमेष्ठी	(१ खर्व सूर्य)	विष्णु	वायु	इ	य	अनाहत
५. सौर मण्डल		इन्द्र	तेज	उ	व	स्वाधिष्ठान
६. चान्द्र	(चन्द्रकक्षा का गोला)	सोम	जल	ऋ	र	मणिपूर
७. पृथिवी		अग्नि	भूमि	लृ	ल	मूलाधार

यह सृष्टि क्रम है। साधना (संहार) क्रम में नीचे से ऊपर उठते हैं, तब मणिपूर के पहले स्वाधिष्ठान आता है। चक्रों के बीज मन्त्र वही रहते हैं। तीन ग्रन्थियों का भेद मुण्डकोपनिषद् के तीन खण्डों में है। मूलाधार की ब्रह्म ग्रन्थि का अर्थ है अलग अलग तत्त्वों की पहचान कर अन्न से क्रमशः उठना (१/१/८)। हृदय ग्रन्थि के भेद का अर्थ है -कर्म का क्षय तथा संशय दूर होना (२/२/८)। अन्त में रुद्र ग्रन्थि के भेद का अर्थ है -गुहा (गणेश रूप में) ग्रन्थि (३/२/९) में पहुंच कर परम ब्रह्म में प्रणिधान जिसका वाचक प्रणव (ॐ) है (योग सूत्र १/२३,२७)। पहले मूलाधार में गणेश का अर्थ है, स्थूल पदार्थों का समूह। तृतीय ग्रन्थि गणेश के सिर के आकार की गुहा है, जहां अनेकता को छोड़ना है। मध्य में हृदय ग्रन्थि में सभी आत्माओं से सम्पर्क है।

८. ॐ कार वर्णन- गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग, प्रपाठक १, कण्डिका १६-३० में ॐ के विषय में प्रश्न तथा उत्तर है।

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे, स खलु ब्रह्मा सृष्टश्चिन्तामापेदे केनाहमेकेनाक्षरेण सर्वांश्च कामान् सर्वांश्च लोकान् सर्वांश्च देवान् सर्वांश्च वेदान् सर्वांश्च यज्ञान् सर्वांश्च शब्दान् सर्वांश्च व्युष्टिः सर्वाणि च भूतानि स्थावर-जङ्गमान्यनुभवेयमिति स ब्रह्मचर्य्यमचरत्। स ओमित्येतदक्षरमपश्यद् द्विवर्णञ्चतुर्मात्र सर्वव्यापि सर्वविभ्वयातयामब्रह्म ब्राह्मीं व्याहृतिं ब्रह्मदैवतं तथा सर्वांश्च कामान् सर्वांश्च लोकान् सर्वांश्च देवान् सर्वांश्च वेदान् सर्वांश्च यज्ञान् सर्वांश्च शब्दान् सर्वांश्च व्युष्टिः सर्वाणि च भूतानि स्थावर-जङ्गमान्यन्वभवत्तस्य प्रथमेन वर्णेनापस्नेहश्चान्वभवत्तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतींष्यभवत्।१६।

ब्रह्म ने ही ब्रह्मा का सृजन पुष्कर (बुखारा, उज्जैन से १२° पश्चिम) में किया। वह ब्रह्मा चिन्ता करने लगे-मैं किस एक अक्षर से सभी कामनाओं, सब लोकों, सभी देवों, सभी वेदों, सभी यज्ञों, सभी शब्दों, सभी बस्तियों (संरचनाओं), सभी स्थावर-जङ्गमों को बनाऊँ। उसने ब्रह्मचर्य किया। २ वर्ण के तथा ४ मात्रा वाले ॐ अक्षर में सर्वव्यापी निर्विकार बह्म को देखा तथा उसी व्यहृति से इन सभी का निर्मार किया। प्रथम वर्ण से आप (जल, रस) तथा स्नेह बनाया। दूसरे वर्ण से तेज तथा आकाशीय ज्योतियों को बनाया।

तस्य प्रथमा स्वरमात्रया पृथिवीमग्निमोषधिवनस्पतीन् ऋग्वेदं भूरिति व्याहृतिर्गायत्रं छन्दस्त्रिवृतं स्तोमं प्राची दिशं वसन्तमृतुं वाचमध्यात्मं जिह्वां रसमितीन्द्रियाण्यन्वभवत्।१७।

उस ॐ की प्रथम स्वर मात्रा (अकार) से पृथिवी, अग्नि, ओषधि, वनस्पति, ऋग्वेद, भू व्याहृति, गायत्री छन्द, त्रिवृत स्तोम ($३^२$ = ९ अहर्गण का क्षेत्र), पूर्व दिशा, वसन्त

ऋतु, अध्यात्म वाणी, जिह्वा इन्द्रिय, रस गुण को उत्पन्न किया।

तस्य द्वितीयया स्वर मात्रयाऽन्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव इति व्याहृति त्रैष्टुभं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं प्रतीची दिशं ग्रीष्ममृतुं प्राणमध्यात्मनासिके गन्धघ्राणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत्।१८।

उस (ॐ) की द्वितीय स्वर मात्रा (उ कार) से अन्तरिक्ष, वायु, यजुर्वेद, भुवः व्याहृति, त्रिष्टुप् छन्द (११X४ = ४४ अक्षर), १५ स्तोम (१५ अहर्गण तक का क्षेत्र), पश्चिम दिशा, ग्रीष्म ऋतु, अध्यात्म प्राण, नासिका इन्द्रिय, गन्ध को सूंघने (घ्राण) की शक्ति को उत्पन्न किया।

तस्य तृतीयया स्वरमात्रया दिवमादित्यं सामवेदं स्वरिति व्याहृतिं जागतं छन्दः सप्तदशं स्तोममुदीचीं दिशं वर्षा ऋतुं ज्योतिरध्यात्मं चक्षुषी दर्शनमितीन्द्रियाण्यन्वभवत्।१९।

उस (ॐ) की तृतीय स्वर मात्रा (ओ कार) से दिवः (आकाश, स्वः लोक), आदित्य (मूल पदार्थ जिससे निर्माण का आदि हुआ), सामवेद, स्वः व्याहृति, जगती छन्द (१२ X ४ = ४८ अक्षर), १७ स्तोम (१७ अहर्गण तक का क्षेत्र), उत्तर दिशा, वर्षा ऋतु, अध्यात्म ज्योति, चक्षु इन्द्रिय तथा देखने की शक्ति उत्पन्न की।

तस्य वकार मात्रयाऽपश्चन्द्रमसमथर्ववेदन्नक्षत्राण्योमिति स्वमात्मानं जनदित्यङ्गिरसामनुष्टुभं छन्दः एकविंशं स्तोमं दक्षिणां दिशं शरदमृतुं मनोऽध्यात्मं ज्ञानं ज्ञेयमितीन्द्रियाण्यन्वभवत्।२०।

उस (ॐ) की चतुर्थ वकार (उ का सम्प्रसारण) मात्रा से अप (जल), चन्द्रमा (या उसके समान तेज का आकाश-गंगा क्षेत्र), नक्षत्र (तारागण), अथर्ववेद, ॐ रूपी अपनी आत्मा को बनाया। इस आङ्गिरस (उस की महिमा रूप रस) से अनुष्टुप् छन्द (८ X ४ = ३२ अक्षर), २१ स्तोम (२१ अहर्गण तक का क्षेत्र), दक्षिण दिशा, शरद ऋतु, आध्यात्मिक मन इन्द्रिय, ज्ञान तथा ज्ञेय बनाया।

तस्य मकारश्रुत्येतिहासपुराणं वाकोवाक्यं गाथानाराशंसीरुपनिषदोऽनुशासनानीति वृधत् करद् गुहन् महत्तच्छमोमिति व्याहृतीः स्वरशम्यनानातन्त्रीः स्वरनृत्यगीत-वादित्राण्यन्वभवच्चैत्ररथं दैवतं वैद्युतं ज्योतिर्बार्हतं छन्दस्तृणवत् त्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ ध्रुवामूर्ध्वां दिशं हेमन्तशिशिरावृतू श्रोत्रमध्यात्मं शब्दश्रवणमितीन्द्रियाण्यन्वभवत्।२१।

उस (ॐ) की मकार श्रुति से इतिहास (प्राचीन घटना), पुराण (पुराने से नयी सृष्टि का रूप तथा विज्ञान), वाकोवाक्य (वार्त्ता द्वारा शिक्षण), गाथा (प्रचीन कथायें), नाराशंसी (विख्यात महापुरुषों के चरित्र), उपनिषद् (मूल सिद्धान्त), अनुशासन (व्यावहारिक क्रिया) आदि का विस्तार किया। यह निर्माण महत् में छिपा है। इसकी शम, ओम् व्याहृतियां हैं, स्वर से शान्ति देने वाले नाना वाद्यों, गीतों, नृत्यों तथा उनकी विद्याओं

को उत्पन्न किया। चैत्ररथ (विभिन्न प्रकार के शरीर या पिण्ड), दैवी, विद्युत् ज्योति, बृहती छन्द (९ X ४ = ३६ अक्षर), ३३ स्तोम (३३ अहर्गण तक का क्षेत्र-सम्पूर्ण सौर मण्डल), ध्रुव से ऊपर (तथा नीचे) की दिशा, हेमन्त, शिशिर ऋतु, अध्यात्म श्रोत्र इन्द्रिय, शब्द तथा श्रवण शक्ति को उत्पन्न किया।

सैषैकाक्षरा ऋग् ब्रह्मणस्तपसोऽग्रे प्रादुर्बभूव ब्रह्म वेदस्याथर्वणं शुक्रमत एव मन्त्राः प्रादुर्बभूवुः स तु खलु मन्त्राणामतपसा-शुश्रूषाऽनध्यायाध्ययनेन यदूनञ्च विरिष्टञ्च यातयामञ्च करोति तदथर्वणां तेजसा प्रत्याप्याययेन् मन्त्राश्च मामभिमुखी भवेयुर्गर्भा इव मातरमभिजिघांसुः पुरस्ताद् ओङ्कारं प्रत्युङ्क्त एतयैव तदृचा प्रत्याप्याययेदेषैव यज्ञस्य पुरस्ताद्युज्यत एषा पश्चात् सर्वत एतया यज्ञस्तायते। तदत्येतदृचोक्तम्। या पुरस्ताद्युज्यत एषा ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्निति। तदेतदक्षरं ब्राह्मणो यं काममिच्छेत् त्रिरात्रोपोषितः प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिष्युपविश्य सहस्रकृत्व आवर्त्तयेत् सिध्यन्त्यस्यार्थाः सर्वकर्माणि चेति ब्राह्मणम्।२२।

ब्रह्मा की तपस्या द्वारा सबसे पहले एक अक्षर की ऋचा (ॐ) प्रकट हुयी। ब्रह्म वेद अथर्वा से प्राप्त हुआ (मुण्डक उपनिषद् १/१/१)। शुक्र मत (या उसके तेज) से मन्त्रों का प्रादुर्भाव हुआ। उसी मन्त्र को पुरुष बिना तप, शुश्रूषा, अध्याय (पाठक्रम) या अध्ययन के प्राप्त करता है उसकी कमी, दोष, समय की हानि दूर करने के लिये उसे अथर्वा के तेज से पूर्ण करे। इससे मन्त्र मेरे सम्मुख वैसे ही होते हैं जैसे माता के गर्भ में हों। जिज्ञासु पुरुष पहले ॐकार का प्रयोग करे। इसी ऋचा से वह दोष (कमी) पूर्ण होता है। अतः यही ऋचा यज्ञ के पहले तथा बाद में जोड़ी जाती है। इसी से यज्ञ का विस्तार होता है। इसी के बारे में यह ऋचा कही गयी है। जो ऋचा पहले कही गयी है-

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते।
(ऋग्वेद १/१६४/३९, अत्रर्व ९/१५/१८, श्वेताश्वतर उपनिषद् ४/८)

= परम व्योम में स्थित इस ऋचा अक्षर (ॐ) में सभी देव तथा विश्व अधिष्ठित हैं। जो इसे नहीं जानता, वह वेद जानकर क्या करेगा? जो इस ऋचा को समझता है, उसमें ये (वेद) स्थित होते हैं।

इस अक्षर को ब्राह्मण किसी भी इष्ट कामना के लिये ३ रात्रि उपवास कर पूर्व मुख कुश आसन पर बैठ वाणी द्वारा १००० बार आवृत्ति करे। इससे उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। इतना ब्राह्मण है (उक्ति समाप्त)

वसोर्धाराणामैन्द्रनगरन्तदसुराः पर्य्यवारयन्त, ते देवा भीता आसन् क इमानसुरानपहनिष्यन्ति, त ओङ्कारं ब्राह्मणः पुत्रः ज्येष्ठं ददृशुस्ते तमब्रुवन् भवता मुखेनेमानसुरान् जयेमेति। स होवाच किं मे प्रतीवाहो भविष्यतीति वरं वृणीष्वेति वृणा इति स वरमवृणीत न मामनीरयित्वा ब्राह्मणाः ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुरब्रह्म तत् स्यादिति तथेति ते देवा देवयजनस्योत्तरार्द्धेऽसुरैः संयता आसन् तान् ओङ्कारेणाग्नीध्रीयाद्देवा असुरान् पराभावयन्त, तद्यत्पराभावयन्त तस्मादोङ्कारः पूर्व उच्यते। यो ह वा एतमोङ्कार न वेदावशः स्यादित्यथ य एवं वेद ब्रह्म वशः स्यादिति सूत्र तस्मादोङ्कार ऋच्यृग् भवति यजुषि यजुः साम्नि साम सूत्रे सूत्रं ब्राह्मणे ब्राह्मणं श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम्।२३।

वसोर्धारा (स्थान नाम) में इन्द्र का नगर है। उसको असुरों ने घेर लिया। देवता डर गये-कौन इन असुरों को मारेगा? उन्होंने ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र (अथर्वा) या ॐकार देखा। उससे कहा-अपके मुखिया होने पर ही हम असुरों को जीतेंगे। उसने उत्तर दिया-मेरा क्या भाग होगा? वे बोले-वर मांगो। वह बोला-मैं मांगूँ? उसने वर मांगा-बिना मेरे (ॐ के) उच्चारण के ब्राह्मण वेद न बोलें। यदि बोलें, वह ब्रह्म (वेद) के विरुद्ध हो। वे बोले-ऐसा ही हो। यज्ञ के उत्तरार्द्ध में देवता असुरों से घिर गये। उन असुरों को ॐकार अग्नि का धारण कर देवों ने हरा दिया। उनको इस प्रकार पराजित करने के कारण सबसे पहले ॐकार कहा जाता है। जो इस ॐकार को नहीं जानता, वह अवश (अशक्त) हो। जो इसे ब्रह्म रूप में जानता है, वह वश (इन्द्रियों को वश में करनेवाला) हो। अतः ॐकार ही ऋक् का ऋक्, यजु का यजु, साम का साम, सूत्र का सूत्र, ब्राह्मण (वेदार्थ) का ब्राह्मण, श्लोक (वर्णन या स्तुति) का श्लोक, तथा प्रणव (ॐकार के सभी खण्ड या प्रभाव) का प्रणव है।-यह ब्राह्मण (व्याख्या) है।

ओङ्कारं पृच्छामः-को धातुः, किं प्रातिपदिकं, किं नामाख्यातं, किं लिङ्गं, किं वचनं, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः, कः स्वरः-उपसर्गो-निपातः, किं वै व्याकरणं, को विकारः, को विकारी, कतिमात्रः, कतिवर्गः, कत्यक्षरः, कतिपदः, कः संयोगः, किं स्थानानुप्रदानकरणं, शिक्षकाः किमुच्चारयन्ति, किं छन्दः, को वर्ण, इति पूर्वे प्रश्ना। अथोत्तरे मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणमृग्यजुः साम कस्माद् ब्रह्मवादिन ओङ्कारमादितः कुर्वन्ति, किं दैवतं, किं ज्योतिषं, किं निरुक्तं, किं स्थानं, का प्रकृतिः, किमध्यात्ममिति-षट्त्रिंशत् प्रश्नाः पूर्वोत्तराणां त्रयो वर्गा द्वादशका एतैरोङ्कारं व्याख्यास्यामः।२४।

हम (देव) ॐकार के विषय में पूछते हैं-(१) क्या धातु है? (२) क्या प्रातिपदिक है?

(३-४) क्या नाम तथा आख्यात (वर्णन) है? (५) क्या लिङ्ग है? (६) क्या वचन है? (७) क्या विभक्ति है? (८) क्या प्रत्यय है? (९-११) क्या स्वर, उपसर्ग, निपात है? (१२) क्या व्याकरण (अवयव) है ?

(१) क्या विकार है? (२) क्या विकारी है? (३) कितनी मात्रा है? (४) कितने वर्ण हैं? (५) कितने अक्षर हैं? (६) कितने पद हैं? (७) क्या संयोग है? (८-९) स्थान का अनुप्रदान तथा करण क्या है? (१०) शिक्षक क्या कहते हैं? (११) क्या छन्द है? (१२) क्या वर्ण (रङ्ग) है? यह पहले के प्रश्न हैं। अब बाद के प्रश्न हैं-

(१) मन्त्र, (२) कल्प, (३) ब्राह्मण, (४) ऋक्, (५) यजु, (६) साम-इनमें ब्रह्मवादी ॐकार का प्रथम उच्चारण क्यों करते हैं? (७) इसका क्या देवता है? (८) क्या ज्योतिष है? (९) क्या निरुक्त है? (१०) क्या स्थान है? (११) क्या प्रकृति है? (१२) क्या अध्यात्म है?

ये ३६ प्रश्न हैं। पहले तथा बाद के १२-१२ प्रश्नों के ३ वर्ग हैं। इनसे हम ॐकार की व्याख्या करेंगे।

इन्द्रः प्रजापतिमपृच्छद् भगवन्नभिसूय पृच्छामीति, पृच्छ वत्सेत्यब्रवीत् किमयमोङ्कारः, कस्य पुत्रः, किञ्चैतच्छन्दः, किञ्चैतद् वर्णः, किञ्चैतद् ब्रह्मा ब्रह्म सम्पद्यते। तस्माद् वै तद् भद्रमोङ्कारं पूर्वमालेभे, स्वरितोदात्त एकाक्षर ॐकार ऋग्वेदे, त्रैस्वर्य्योदात्त एकाक्षर यजुर्वेदे, दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ॐकार सामवेदे, ह्रस्वोदात्त एकाक्षर ॐकारोऽथर्ववेद, उदात्तोदात्तद्विपद अ उ इत्यर्द्ध चतस्रो मात्रा मकारे व्यञ्जनमित्याहुर्या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् ब्राह्मय पदं, या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् वैष्णव पदं, या सा तृतीया मात्रैशानदेवत्या कपिला वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेदैशानपदं, या सार्द्धचतुर्थी मात्रा सर्वदेवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत् पदमनामकमोङ्कारस्य चोत्पत्तिर्विप्रो यो न जानाति तत् पुनरुपनयनं तस्माद् ब्राह्मणवचनमादर्त्तव्यं यथा लातव्यो गोत्रो ब्रह्मणः पुत्रो गायत्रं छन्दः शुक्लो वर्ण पुंसो वत्सो रुद्रो देवता ओङ्कारो वेदानाम्।२५।

इन्द्र ने प्रजापति से पूछा-भगवन्! उत्सुकता शान्ति के लिये पूछता हूँ। प्रजापति-वत्स! पूछो-यह कहा।

(१) यह ॐकार क्या है? (२) किसका पुत्र है? (३) इसका छन्द क्या है? (४) इसका रङ्ग क्या है? (५) किस ब्रह्म को ब्रह्मा प्राप्त करता है तथा उस भद्र ॐकार को

पहले पाता है?

(शङ्का)-स्वरित उदात्त स्वर का १ अक्षर का ॐकार ऋग्वेद में है। तीनों स्वर (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत) सहित उदात्त १ अक्षर वाला ॐकार यजुर्वेद में है। दीर्घ प्लुत सहित उदात्त १ अक्षर वाला ॐकार सामवेद में है। ह्रस्व उदात्त १ अक्षर का ॐकार अथर्ववेद में है। उदात्त सहित उदात्त २ पद का अ, उ-यह साढ़े ४ मात्रायें हैं और मकार में व्यञ्जन है-ऐसा कहते हैं।

(समाधान)-जो प्रथम मात्रा है, वह ब्रह्म देवता की लाल रङ्ग की है। जो इसका नित्य ध्यान करता है वह ब्रह्म का पद प्राप्त करता है। दूसरी स्वर मात्रा का विष्णु देवता तथा काला रङ्ग है। जो इसका ध्यान करता है वह वैष्णव पद प्राप्त करता है। तीसरी स्वर मात्रा ईशान देवता की पीले रङ्ग की है। जो इसका ध्यान करता है, वह ऐशान पद प्राप्त करता है। आधी के साथ जो चतुर्थी मात्रा है, वह सर्वदेव (विश्वेदेव) का है तथा शुद्ध स्फटिक रङ्ग है। उसका नित्य ध्यान करने से अनाम पद को प्राप्त करता है। ॐकार की उत्पत्ति जो विप्र नहीं जानता, उसका दुबारा उपनयन संस्कार करना होगा।

को धातुरित्यापृर्धातुरवतिमप्येके रूपसामान्यादर्थ सामान्यन् नेदीयस्तस्मादापेः ॐकारः सर्वमाप्नोतीत्यर्थः कृदन्तमर्थवत् प्रातिपदिकमदर्शनं प्रत्ययस्य नाम सम्पद्यते निपातेषु चैनं वैयाकरणा उदात्तं समामनन्ति तदव्ययीभूतमन्वर्थवाची शब्दो न व्येति कदाचनेति। सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु। वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्। को विकारो च्यवते प्रसारणम् (आप्नोति रावावपकारौ) आप्नोतेराकारपकारौ विकार्य्यावादित ॐकारो विक्रियते द्वितीयो मकार एवं द्विवर्ण एकाक्षर ओमित्योङ्कारो निर्वृत्तः।२६।

(१) कौन धातु है, इसका उत्तर-आपृ धातु है, अवति (रक्षा करना) को भी कोई कहते हैं। रूप की समानता (धातु आदि की आकृति) की अपेक्षा अर्थ की समानता अधिक निकट होती है। अतः आप (व्यापना) धातु से ॐकार शब्द अधिक उचित है-यह (ॐ) सबमें व्यापता है। कृदन्त अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक होता है (अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम्-पाणिनि, अष्टाध्यायी, १/२/४५)।

(२) प्रत्यय के लोप से अदर्शन संज्ञा होती है।

(३) प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय का कार्य होता है (प्रत्यय लोपे प्रत्ययलक्षणम्-पाणिनि १/१/६२)। व्याकरण के ज्ञाता निपातों में इसे (ॐ को) उदात्त मानते हैं। यह अव्यय हुआ पद, अनुकूल अर्थ बताने वाले पद में कभी विकार नहीं होता। क्योंकि कहा है-तीनों लिङ्गों में और सभी विभक्तियों में जो सदृश है, तथा किसी भी वचन में विकृत

नहीं होता, वह अव्यय है। (स्वरादिनिपातमव्ययम्-पाणिनि १/१/३७= स्वर आदि तथा निपात अव्यय हैं)

विकार वाला कौन है? (इसका उत्तर)-आप् धातु (व्यापना) का सम्प्रसारण होता है। (इग्यणः सम्प्रसारणम्-पाणिनि १/१/५= यण् के स्थान में इक् करने को सम्प्रसारण कहते हैं)। (अ+प) या (अ+व)-इन दोनों में विकार सम्भव है। आदि के ॐकार में विकार हो सकता है, मकार द्वितीय वर्ण है। इस प्रकार २ वर्ण (औ+म्) वाला, एक अक्षर वाला ॐ अर्थात् ओङ्कार सिद्ध होता है।

कतिमात्र इत्यादेस्तिस्रो मात्रा अभ्यादाने हि प्लवते मकारश्चतुर्थी किं स्थानमित्युभावौष्ठौ स्थानं नादानुप्रदानकरणौ च द्वयस्थानं सन्ध्यक्षरमवर्णलेशः कण्ठ्यो यथोक्तशेषः पूर्वो विवृतकरणस्थितश्च द्वितीय स्पृष्ट करणस्थितश्च न संयोगो विद्यत आख्यातोपसर्गानुदात्त-स्वरित-लिङ्ग-विभक्ति-वचनानि च संस्थानाध्यायिन आचार्य्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणादेव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्त्यथापरपक्षीयाणां कविः पाञ्चालचण्डः परिपृच्छको बभूव पृथगुद्गीथ दोषान् भवन्तो ब्रुवन्त्विति तद्वाप्युपलक्षयेद्वर्णाक्षरपदांकशो विभक्त्यामृषि निषेवितामिति वाचं स्तुवन्ति तस्मात् कारणं ब्रूमो वर्णानामयमिदं भविष्यतीति षडङ्ग-विदस्तत्तथाऽधीमहे। किञ्छन्द इति गायत्रं हि छन्दो गायत्री वै देवानामेकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता द्वौ द्वादशकौ वर्गवितद् वै व्याकरणं धात्वर्थ वचनं शैक्ष्यं छन्दो वचनं चाथोत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गौ वेदरहसिकी व्याख्याता मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणमृग्यजुः सामाथर्वण्येषा व्याहृतिश्चतुर्णां वेदानामानुपूर्वेणों भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतयः।२७।

ॐ कितनी मात्रा का है? (उत्तर)-मन्त्र के आरम्भ में ही वह (ॐ) ३ मात्राओं से प्लुत हो जाता है। मकार चौथी मात्रा है। (ओमभ्यादाने-पाणिनि ८/२/७८)

ॐ का क्या स्थान है? (उत्तर)-उकार तथा मकार के दोनों ओठ स्थान हैं। दोनों नाद बढ़ानेवाले प्रयत्न हैं। २ स्थान वाला सन्धि अक्षर होता है। अकार कण्ठ स्थान का है। ऊपर कहे (उ+म) का शेष पहला वर्ण (अकार) विवृति प्रयत्न में ठहरा हुआ है। दूसारा (मकार) स्पृष्ट प्रयत्न में ठहरा है।

ॐ में क्या संयोग है? (उत्तर)-संयोग नहीं है। (हलोऽनन्तराः संयोगः-पाणिनि १/१/७ = मध्य में अच् नहीं रहने से संयोग होता है)

ॐ का आख्यात, उपसर्ग, स्वर, लिङ्ग, विभक्ति, वचन क्या है? (उत्तर)-संस्थानों के अध्ययन करने वाले पूर्व अचार्य हुये हैं, वे आख्यात, उपसर्ग, स्वर, लिङ्ग, विभक्ति, वचन को श्रवण द्वारा जानते हैं, कारण नहीं पूछते।

अन्य पक्ष का कवि पाञ्चाल-देश का चण्ड प्रश्नकर्त्ता हुआ। उसने पूछा-आप उद्गीथ के दोषों को अलग अलग कर बतायें। वह भी वर्ण, अक्षर, पद, अङ्क, विभक्ति के अनुसार। (उत्तर)-ऋषि द्वारा सेवित वाणी स्तुत्य है, अतः कारण कहते हैं। वर्णों में इस वर्ण का यह रूप हो जयेगा-यह षडङ्ग पढ़ने वाले जानते हैं। अतः वैसा ही पढ़ते हैं।
ॐ का क्या छन्द है? (उत्तर)-गायत्री ही छन्द है। देवताओं की गायत्री (पिङ्गल शास्त्र की दैवी गायत्री) १ अक्षर वाली तथा श्वेत वर्ण की कही जाती है।
२ वर्ग १२-१२ के हैं, यह अलग-अलग विभाग (व्याकरण) द्वारा धातु, अर्थ, छन्द, वचन, शिक्षा (उच्चारण) बताता है। अर्थात् व्याकरण के विषय २४ भागों में हैं। बाद के २ वर्ग भी १२-१२- के हैं। वे वेद का रहस्य बताते हैं-मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण द्वारा। अथर्व, ऋक्, यजुः, साम की व्याहृति क्रमशः ॐ, भूः, भुवः, स्वः हैं।
असमीक्ष प्रवह्लितानि श्रूयन्ते द्वापरादावृषीणामेकदेशो दोषपतिरिह चिन्तामापेदे त्रिभिः सोमः पातव्यः समाप्तमिव भवति तस्मादृग्यजुः सामान्यपक्रान्त तेजांस्यासन् तत्र महर्षयः परिदेवयाञ्चक्रिरे महच्छोकभयं प्राप्ताः स्मो न ते तथेत्युक्त्वा तूष्णीमतिष्ठन्नानुपसन्नेभ्य इत्युपोपसीदामीति नीचैर्बभूवुः। स एभ्य उपनीय प्रोवाच मामिकामेव व्याहृतिमादितः आदितः कृणुध्वमित्येवं मामका अधीयन्ते।
नर्त्ते भृग्वङ्गिरोविद्भ्यः सोमः पातव्य ऋत्विजः पराभवन्ति यजमाना रजसापध्वस्यति श्रुतिश्चापध्वस्ता तिष्ठतीत्येवमेवोत्तरोत्तराद्योगात्तोकं तोकम्प्रशाध्वमित्येवं प्रतापो न पराभविष्यतीति तथा ह तथा ह भगवन्निति प्रतिपेदिर आप्याययंस्ते तथा वीतशाोकभया बभूवुः। तस्माद् ब्रह्मवादिन ओंकारमादितः कुर्वन्ति।२८।
अप्रमाणित उड़ती बातें भी सुनी जाती हैं। द्वापर के आरम्भ में ऋषियों के एक वर्ग में दोषद्रष्टा विचार करने लगा-३ वेदों के साथ सोम पीकर अध्ययन पूर्ण करना चाहिये। उससे ये ३ वेद (ऋक्, युः, साम) निस्तेज हो गये। तब महर्षि चिन्ता करने लगे-हमें बड़ा शोक तथा भय हुआ है। इतना ही नहीं, सबने मिलकर कहा- अब हम भगवान् के पास ही दौड़कर चलें। उस भगवान (ॐ) ने कहा-मैं सबका शर्म (आवरण, रक्षक) हो जाऊँ। ऐसा ही हो-यह कह कर वे चुपचाप बैठ गये। यह अविश्वासी (दूरस्थ) लोगों के लिये नहीं है, और अपने निकट बैठाया। ऋषि नीचे बैठ गये। वह (ॐ) पास आकर कहने लगा-मेरी व्याहृति को प्रत्येक मन्त्र के आदि में करो। इससे मेरे लोगों की रक्षा होती है।

भृगु (आकर्षण) अङ्गिरा (विकर्षण) को जानने वाले के बिना सोम रस नहीं पीना चाहिये। (अन्य द्वारा सोम पान से) ऋत्विज हार जाते हैं, यजमान ऐश्वर्य से ध्वस्त हो जाता है, तथा श्रुति भी ध्वस्त स्थिति में आ जाती है। इस प्रकार सन्तानों को उत्तरोत्तर शिक्षा दो। इससे प्रताप का पराभव नहीं होगा। ऐसा कहा, ऐसा उसने कहा। ऋषि बोले-भगवन्! हम ऐसा की करेंगे। वे परस्पर मिले तथा सशक्त हुये। तथा शोक-भय दूर हुआ। इसी कारण ब्रह्मवादी आरम्भ में ॐ कहते हैं।
किं देवमित्यृचामग्निर्देवतन्तदेव ज्योतिर्गायत्रं छन्दः पृथिवी स्थानम्। अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातममित्येवमादिं कृत्वा ऋग्वेदमधीयते।
यजुषां वायुर्देवतं तदेव ज्योतिः त्रैष्टुभं छन्दोऽन्तरिक्षं स्थानम्। इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते।
साम्नामादित्यो देवतं तदेव ज्योतिर्जागतं छन्दो द्यौः स्थानम्। अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषीत्येवमादिं कृत्वा सामवेदमधीयते।
अथर्वणां चन्द्रमा देवतं तदेव ज्योतिः सर्वाणि छन्दांस्यापः स्थानम्। शन्नो देवीरभीष्टय इत्येवमादिं कृत्वा अथर्ववेदमधीयते। अद्भ्यः स्थावर जङ्गमो भूतग्रामः सम्भवति, तस्मात् सर्वमापोमयं भूतं सर्वं भृग्वङ्गिरोमयम्। अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिता-इत्यबिति प्रकृतिरपामोङ्कारेण चैतस्माद् व्यासः पुरोवाच-भृग्वङ्गिरोविदा संस्कृतोऽन्यान् वेदानधीयीत नान्यत्र संस्कृतो भृग्वङ्गिरसोऽधीयीत अथ सामवेदे खिलश्रुतिः ब्रह्मचर्य्येण चैतस्मादथर्वाङ्गिरसो ह यो वेद स वेद सर्वमिति ब्राह्मणम्।२९।
ॐ का क्या देवता, ज्योति, छन्द, तथा स्थान है? (उत्तर)- ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का अग्नि देवता, वही ज्योति, गायत्री छन्द, पृथिवी स्थान है। इस मन्त्र से ऋग्वेद का आरम्भ है-अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।
यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र का वायु देवता, वही ज्योति, त्रिष्टुप् छन्द, अन्तरिक्ष स्थानहै। इस मन्त्र से यजुर्वेद का आरम्भ है-इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।
सामवेद के आरम्भिक मन्त्र का आदित्य देवता, वही ज्योति, जगती छन्द तथा द्यौ (स्वर्लोक) स्थान है। साम का आरम्भ इस मन्त्र से होता है-अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।

अथर्व वेद (पैप्पलाद शाखा) के प्रथम मन्त्र का चन्द्रमा देवता, वही ज्योति (आकाशगंगा का तेज), सभी छन्द, आप् (व्यापक जल) स्थान है। इसका आरम्भिक मन्त्र है-शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि श्रवन्तु नः। (प्रचलित शौनक शाखा में यह सूक्त ६ का प्रथम मन्त्र है। इसका प्रथम मन्त्र है-ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।)

आप् से स्थावर और जङ्गम प्रणी हुये हैं। अतः सभी आपोमय है। सभी भूत भृगु (आकर्षण) तथा अङ्गिरा (विकर्षण)रूप हैं। तीनों वेद भृगु तथा अङ्गिरा के भीतर स्थित हैं। अप् ही प्रकृति है। इन अपों में ॐकार द्वारा सृष्टि हुयी। अतः व्यास ने पहले कहा था-भृगु-अङ्गिरा जानकर संस्कृत (संस्कारित) व्यक्ति ही वेद पढ़े। अन्य प्रकार के संस्कार वाला इन्हें नहीं समझेगा। सामवेद में भी खिलश्रुति है-ब्रह्मचर्य से ही इस अथर्वाङ्गिरस को जो पढ़ता है वही पूर्ण वेद जान सकता है-यह ब्राह्मण हुआ।

अध्यात्ममात्मभैषज्यमात्मकैवल्यमोंकारः, आत्मानं निरुद्ध्य सङ्गममात्रीं भूतार्थचिन्तां चिन्तयेदतिक्रम्य वेदेभ्य सर्वपरमध्यात्म फल प्राप्नोतीत्यर्थः, सवितर्कं ज्ञानमयमित्येतैः प्रश्नैः प्रतिवचनैश्च यथार्थं पदमनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञो हि प्रबलो विषयी स्यात्, सर्वस्मिन्वाकोवाक्य इति ब्राह्मणम्।३०।

अध्यात्म, आत्मा का रोग-निवारण, आत्मा का कैवल्य-सभी ओंकार है। सङ्गम से उत्पन्न चिन्ता को नियन्त्रित कर, आत्मा की चिन्ता करे। वेदों द्वारा सभी ज्ञानों चिन्ताओं का अतिक्रमण कर ही अध्यात्म फल मिलता है। यह सवितर्क ज्ञान है (योग सूत्र की सवितर्क समाधि)। इसमें प्रश्न, प्रतिवचन (उत्तर)यथार्थ पदों का (अनु-)विचार कर प्रकरण जानने वाला ही सटीक ज्ञान पाता है, तथा सभी विषयों में वार्त्तालाप कर सकता है। यह ब्राह्मण हुआ।

९. गायत्री उपनिषद्-गोपथ ब्राह्मण, पूर्व भाग, प्रपाठक १, कण्डिका (३१-३८) को गायत्री उपनिषद् कहा जाता है।

एतद्ध स्म एतद् विद्वांसमेकादशाक्षं मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगाम। स तस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतीति विज्ञायोवाच किं स्विन् मर्य्यादा अयं तं मौद्गल्यो अध्येति यदस्मिन् ब्रह्मचर्य्ये वसतीति तद्धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव स आचार्य्यायाब्रज्याचचष्टे, दुरधीयानं वा अयं भवन्तमवोचद्योऽयमद्यातिथिर्भवति। किं सौम्य विद्वानिति। त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति तस्य सौम्य विस्पष्टो विजिगीषोऽन्तेवासी तन्मे ह्वयेति, तमाजुहाव, तमभ्युवाचासाविति भो३ इति किं सौम्य त आचार्य्योऽध्येतीति, त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति, यन्नु खलु सौम्यास्माभिः

सर्वे वेदा मुखतो गृहीताः कथन्त एवमाचार्य्यो भाषते कथं नु शिष्टाः शिष्टेभ्य एवं भाषेरन् यं ह्येनमहं प्रश्नं पृच्छामि न तं विवक्ष्यति न ह्येनमध्येतीति। स ह मौद्गल्यः स्वमन्तेवासिनमुवाच, परेहि सौम्य ग्लावं मैत्रेयमुपसीदाधीहि भोः सावित्रीं गायत्रीञ्चतुर्विंशति योनिं द्वादश मिथुनां यस्या भृग्वङ्गिरसश्चक्षुर्यस्यां सर्वमिदं श्रितं, तां भवान् प्रब्रवीत्विति स चेत्सौम्य दुरधीयानो भविष्यत्याचार्योवाच ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणो सावित्रीं प्राहेति वक्ष्यति, तत्त्वं ब्रूयात् दुरधीयानन्तं वै भवान् मौद्गल्यमवोचत् स त्वा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः पुरा संवत्सरादार्त्तिमाकृष्यसीति।३१।

यह प्रसिद्ध कथा है। विद्वान् ११ अक्ष (इन्द्रियों वाले) मौद्गल्य (मुद्गल वंश के) पास ग्लाव (चन्द्र वंशी) मैत्रेय (मित्रयु का शिष्य) आया। वह मौद्गल्य को वहां ब्रह्मचर्य से रहते हुये जान कर पूछा-कौन सी मर्यादायें हैं जिसे मौद्गल्य तुम अध्ययन कर रहे हो तथा इस ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हो? यह मौद्गल्य के शिष्य ने सुनी। वह आचार्य के पास जाकर बोला-यह आपको अनपढ़ कह रहा है किन्तु अतिथि है। मौद्गल्य ने कहा-सौम्य! क्या वह विद्वान् है? (शिष्य बोला)-महाराज! वह तीनों वेद कहता है। मौद्गल्य ने कहा-सौम्य! उस जीतने की इच्छा करने वाले के योग्य शिष्य को बुला। शिष्य उसे बुला लाया तथा मौद्गल्य से कहा-महाराज! यही वह है। मौद्गल्य ने कहा-सौम्य! तेरा आचार्य क्या पढ़ाता है? वह बोला-महाराज! वह तीनों वेद कहता है। मौद्गल्य ने कहा-सौम्य! हमने सभी वेद मुख से ग्रहण किये हैं, तेरा आचार्य ऐसा कैसे कह रहा है? क्या शिष्ट लोग शिष्टों से ऐसा बोलते हैं? जो प्रश्न मैं पूछता हूँ, उसका उत्तर वह नहीं दे सकता जो इस वेद को नहीं पढ़ा है। फिर वह मौद्गल्य अपने शिष्य से बोला-सौम्य! जा और ग्लाव मैत्रेय से मिल कर पूछो-२४ योनि, १२ युग्म वाली सविता देवता वाली गायत्री को पढ़। जिसके भृगु-आङ्गिरस नेत्र हैं, जिसमें यह सभी स्थित है, आप उस गायत्री को समझायें। फिर आचार्य मौद्गल्य ने कहा-सौम्य! यदि वह कुपढ़ है, तो आप कहें कि ब्रह्मचारी को ब्रह्मचारी सावित्री (सविता देवता वाली) गायत्री बताता है। तब कहें-आपने ही मौद्गल्य को कुपढ़ कहा है। उसने तुमसे जो प्रश्न पूछा था उसका उत्तर हमें नहीं बताने पर १ वर्ष पीड़ा भोगनी होगी।

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव, तं ह पप्रच्छ स ह न प्रतिपेदे, तं होवाच दुरधीयानं तं वै भवान् मौद्गल्यमवोचत्, स त्वा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः पुरा संवत्सरादार्त्तिमाकृष्यसीति। स ह मैत्रेयः स्वानन्तेवासिन उवाच यथार्थं भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्तां दुरधीयानं या अहं मौद्गल्यमवोचं स मा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचं, तमुपैष्यामि शान्तिं करिष्यामीति।

स ह मैत्रेय: प्रात: समित्पाणिर्मौद्गल्यमुपससादासावाग्रहं भो मैत्रेय: किमर्थमिति दुरधीयानं वा अहं भवन्तमवोचं त्वं मा यम्प्रश्नमप्राक्षीर्न्न तं व्यवोचं त्वामुपैष्यामि शान्तिं करिष्यामीति, स होवाचात्र वा उपेतञ्च सर्वञ्च कृतं पापकेन त्वा यानेन चरन्तमाहूरथोऽयं मम कल्याणस्त ते ददामि तेन याहीति। स होवाचैतदेवात्रात्विषञ्चानृशंस्यञ्च यथा भवानाहोपायामित्येवं भवन्तमिति तं होपेयाय तं होपेत्य पप्रच्छ किंस्विदाहुर्भो: सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवय: किमाहुर्धियो विचक्ष्व यदि ता प्रविश्य प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति।

तस्मा एतत् प्रोवाच वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहु: कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति।

तमुपसङ्गृह्य पप्रच्छाधीहि भो: क: सविता का सावित्री।३२।

वह वहां गया जहां दूसरा (मैत्रेय) था। उसने पूछा और वह (मैत्रेय) न बता सका। मैत्रेय से वह बोला-आपने उस मौद्गल्य को कुपढ़ बताया है, उसने तुमसे जो प्रश्न किया है उसका उत्तर नहीं बताने पर १ वर्ष तुमको पीड़ा होगी। उस मैत्रेय ने अपने शिष्यों से ठीक ठीक कहा-आप अपने घर इच्छानुसार चले जायें। मैंने मौद्गल्य को कुपढ़ बताया है। उसने मुझसे जो पूछा वह मैं नहीं बता पाया। मैं उसके पास जाकर उसको शान्त करूंगा। वह (शिष्य बनने के लिये) हाथ में समिधा लेकर प्रात:काल अनुग्रहशील मौद्गल्य के पास पहुंचा तथा कहा-भगवन्! मै मैत्रेय हूँ। मौद्गल्य ने कहा- क्यों आये? (मैत्रेय ने कहा) मैंने आपको कुपढ़ बताया था। आपने मुझसे जो पूछा वह मैं नहीं बता पाया। तेरे पास जाकर तुम्हें सन्तुष्ट करूंगा। वह मौद्गल्य बोला-सब पढ़ कर यहां आने पर लोग आपको पाप मार्ग पर चलनेवाला कहते हैं। मैं आपको कल्याणकारी रथ देता हूँ, उससे चलें। वह मैत्रेय बोला-आपका यह कर्म बिना ईर्ष्या के तथा दयायुक्त है। आप के वचन के अनुसार मैं आपके पास आया हूँ। वह मौद्गल्य के पास आया तथा पूछा-भगवन्! सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य-इसका अर्थ कवि लोग क्या करते हैं? धिय: पद को वे क्या कहते हैं? यह बतायें कि सविता प्रवेश कर उन्हें कैसे प्रेरित करता है।

उस मैत्रेय से कहा-वेद छन्द हैं, कवि वरेण्य सविता देव को भर्ग तथा अन्न कहते हैं। धिय: कर्म है, यह भी बताता हूँ। सविता इसीसे प्रेरित करता है।

उसके पास जाकर मैत्रेय ने निवेदन किया-भगवन्! सविता तथा सावित्री के बारे में बतायें।

(१) मन एव सविता, वाक् सावित्री, यत्र ह्येव मनस्तद् वाक्, यत्र वै वाक् तन्मन:, इत्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (२) अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री, यत्र ह्येवाग्निस्तत्

पृथिवी यत्र वै पृथिवी तदग्निरित्येते द्वे योनी एकं मिथुनं, (३) वायुरेव सविताऽन्तरिक्षं सावित्री यत्र ह्येव वायुस्तदन्तरिक्षं, यत्र वा अन्तरिक्षं तद्वायुरित्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (४) आदित्य एव सविता द्यौ: सावित्री यत्र ह्येवादित्यस्तद्द्यौर्यत्र वै द्यौस्तदादित्य इत्येते द्वे योनी एकं मिथुनं, (५) चन्द्रमा एव सविता, नक्षत्राणि सावित्री, यत्र ह्येव चन्द्रमास्तन्नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तच्चन्द्रमा, इत्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (६) अहरेव सविता, रात्रि: सावित्री, यत्र ह्येवाहस्तद्रात्रिर्यत्र वै रात्रिस्तदहरित्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (७) उष्णमेव सविता, शीतं सावित्री यत्र ह्येवोष्णं तच्छीतं, यत्र वै शीतं तदुष्णमित्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (८) अभ्रमेव सविता, वर्षं सावित्री, यत्र ह्येवाभ्रन्तद्वर्षं यत्र वै वर्षं तदभ्रमित्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (९) विद्युदेव सविता, स्तनयित्नु: सावित्री, यत्र ह्येव विद्युत् तत् स्तनयित्नु: यत्र वै स्तनयित्नुस्तद्विद्युदित्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (१०) प्राण एव सविता, अन्नं सावित्री, यत्र ह्येव प्राणस्तदन्नं यत्र वा अन्नं तत् प्राण इत्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (११) वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री, यत्र ह्येव वेदास्तच्छन्दांसि, यत्र वै छन्दांसि तद् वेदा इत्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्, (१२) यज्ञ एव सविता, दक्षिणा सावित्री, यत्र ह्येव यज्ञस्तत् दक्षिणा, यत्र वै दक्षिणास्तद्यज्ञ इत्येते द्वे योनी एकं मिथुनम्। एतद्ध स्मैतद्विद्वांसमोपाकारिमासस्तुर्ब्रह्मचारी ते संस्थित इत्यथैत आसस्तुराचित इव चितो बभूवाथोत्थाय प्राब्राजीदित्येतद्वाऽहं वेद नैतासु योनिष्वित एतेभ्यो वा मिथुनेभ्य: सम्भूतो ब्रह्मचारी मम पुरायुष: प्रेयादिति।३३।

सविता	सावित्री
१. मन	वाक्
२. अग्नि	पृथिवी
३. वायु	अन्तरिक्ष
४. आदित्य	द्यौ
५. चन्द्रमा	नक्षत्र
६. अह:	रात्रि
७. उष्ण	शीत
८. अभ्र	वर्ष (वर्षा)
९. विद्युत्	स्तनयित्नु (गर्जन)
१०. प्राण	अन्न

११. वेद छन्द
१२. यज्ञ दक्षिणा
ये सभी १२ मिथुन (जोड़ा) हैं । अलग अलग २४ तत्त्व २४ योनि हैं।
ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठामायतनमैक्षत, तत्तपस्व यदि तद् व्रते घ्रियेत तत्सत्ये प्रत्यतिष्ठत्, सः सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत् सावित्रीं पर्य्यदधात् तत् सवितुर्वरेण्यमिति सावित्र्याः प्रथम; पादः पृथिव्यञ्च समदधादृचाऽग्निमग्निना श्रियं, श्रिया स्त्रियं, स्त्रिया मिथुनं, मिथुनेन प्रजां, प्रजया कर्मं, कर्म्मणा तपः, तपसा सत्यं, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणं, ब्राह्मणेन व्रतं, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवत्यविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवनं भवति य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं प्रथमं पादं व्याचष्टे।३४।
मौद्गल्य कहते हैं-इस ब्रह्म से ही श्री की प्रतिष्ठा तथा आश्रय देखा। ऐसा तप करें जिस व्रत से आप सत्य में प्रतिष्ठित हों। उस सविता ने सावित्री द्वारा ब्राह्मण को बनाया, उसने सावित्री का धारण किया। उस सविता का प्रथम पाद है-तत् सवितुर्वरेण्यम्। पृथिवी से ऋचा, ऋक् से अग्नि, अग्नि से श्री, श्री से स्त्री, स्त्री से मिथुन, मिथुन से प्रजा, प्रजा से कर्म, कर्म से तप, तप से सत्य, सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से ब्राह्मण, ब्राह्मण ने व्रत को धारण किया। व्रत से ही ब्राह्मण प्रशंसित होता है, अशून्य (पूर्ण) होता है, अविच्छिन्न (अखण्ड, समन्वय) होता है, तथा उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहती है। विद्वान् इस प्रकार सावित्री का प्रथम पाद बताते हैं।
भर्गो देवस्य धीमहीति सावित्र्या द्वितीयः पादोऽन्तरिक्षेण यजुः समदधात् यजुषा वायुं, वायुनाऽभ्रम्, अभ्रेण वर्षं, वर्षेणौषधिवनस्पतीनोषधिवनस्पतिभिः पशून्, पशुभिः कर्म, कर्मणा तपस्तपसा सत्यं, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणं, ब्राह्मणेन व्रतं, व्रतेन वै ब्राह्मणो संशितो भवत्यशून्यो भवत्विच्छिन्नो भवत्यविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं द्वितीयं पादं व्याचष्टे।३५।
सावित्री का द्वितीय पाद है-भर्गो देवस्य धीमहि। इसने अन्तरिक्ष में यजु को धारण किया, यजु से वायु, वायु से अभ्र (मेघ), अभ्र से वर्षा, वर्षा से ओषधि (जो फल पकने पर नष्ट होती हैं) तथा वनस्पति (प्रति वर्ष फल देती हैं), ओषधि-वनस्पति से पशु, पशु से कर्म, कर्म से तप, तप से सत्य, सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से ब्राह्मण, ब्राह्मण ने व्रत को धारण किया। व्रत से ही ब्राह्मण प्रशंसित होता है, अशून्य (पूर्ण) होता है, अविच्छिन्न

(अखण्ड, समन्वय) होता है, तथा उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहती है। विद्वान् इस प्रकार सावित्री का द्वितीय पाद बताते हैं।
धियो यो नः प्रचोदयादिति सावित्र्यास्तृतीयः पादो दिवा साम समदधत् साम्नाऽऽदित्यमादित्येन रश्मीन्, रश्मिभिर्वर्षं, वर्षेणौषधिवनस्पतीनोषधिवनस्पतिभिः पशून्, पशुभिः कर्म, कर्मणा तपस्तपसा सत्यं, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणं, ब्राह्मणेन व्रतं, व्रतेन वै ब्राह्मणो संशितो भवत्यशून्यो भवत्विच्छिन्नो भवत्यविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं तृतीयं पादं व्याचष्टे।३६।
सावित्री का तृतीय पाद है-धियो यो नः प्रचोदयात्। सावित्री के तृतीय पाद ने आकाश में साम का धारण किया। साम से आदित्य, आदित्य से रश्मि, रश्मि से वर्षा, वर्षा से ओषधि तथा वनस्पति, ओषधि-वनस्पति से पशु, पशु से कर्म, कर्म से तप, तप से सत्य, सत्य से ब्रह्म, ब्रह्म से ब्राह्मण, ब्राह्मण ने व्रत को धारण किया। व्रत से ही ब्राह्मण प्रशंसित होता है, अशून्य (पूर्ण) होता है, अविच्छिन्न (अखण्ड, समन्वय) होता है, तथा उसकी परम्परा अविच्छिन्न रहती है। विद्वान् इस प्रकार सावित्री का तृतीय पाद बताते हैं।
(१) तेन ह वा एवं विदुषा ब्राह्मणेन ब्रह्माभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। (२) ब्रह्मणाऽऽकाशमभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टया। (३) आकाशेन वायुरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टो, (४) वायुना ज्योतिरभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। (५) ज्योतिषाऽपोऽभिपन्नाग्रसिताः परामृष्टा। (६) अद्भिर्भूमिरभिपन्नाग्रसिताः परामृष्टा। (७) भूम्याऽन्नमभिपन्नं ग्रसितं परामृष्ट, (८) मन्नेन प्राणोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। (९) प्राणेन मनोऽभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। (१०) मनसा वागभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टा। (११) वाचा वेदा अभिपन्ना ग्रसिताः परामृष्टा। (१२) वेदैर्यज्ञोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। तानि ह वा एतानि द्वादशमहाभूतान्येवंविधप्रतिष्ठितानि तेषां यज्ञ एव परार्द्ध्यः।३७।
(१) उस (सावित्री का अर्थ जानने वाले) विद्वान् ब्राह्मण द्वारा ब्रह्म अभिपन्न (प्राप्त) हुआ, ग्रसित हुआ (पूरी तरह समझा गया) तथा दूसरों को समझाया गया (परामृष्ट= परामर्श देना)। (२) ब्रह्म से आकाश प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (३) आकाश से वायु प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (४) वायु से ज्योति प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (५) ज्योति से आप प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (६) आप से भूमि प्राप्त हुयी, ग्रसी गयी तथा प्रसारित हुयी। (७) भूमि से अन्न प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (८) अन्न से प्राण प्राप्त हुआ, ग्रसा

गया तथा प्रसारित हुआ। (९) प्राण से मन प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (१०) मन से वाक् प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (११) वाक् से वेद प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। (१२) वेद से यज्ञ प्राप्त हुआ, ग्रसा गया तथा प्रसारित हुआ। यही १२ महातत्त्व इस प्रकार विधान के साथ प्रतिष्ठित हैं। उन सबमें यज्ञ ही परार्द्ध्य है। (यज्ञ का आरम्भ आकाश-गंगा के निर्माण से होता है, उसकी परिधि परार्ध योजन है, १ योजन = पृथ्वी परिधि का आधा अंश=५५.५ तक.मी.)। यहां श्रेष्ठतम कर्म के रूप में परार्द्ध्य कहा गया है। सभी कर्म उत्पादक नहीं होते, कई विनाश भी करते हैं। इच्छित वस्तुओं का उत्पादन ही यज्ञ है।

तं ह स्मैतमेवं विद्वांसो मन्यन्ते विद्म एनमिति याथातथ्यमविद्वांसो (१)ऽयं यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितो, (२) वेदा वाचि प्रतिष्ठिता, (३) वाङ् मनसि प्रतिष्ठिता, (४) मनः प्राणे प्रतिष्ठितं, (५) प्राणोऽन्ने प्रतिष्ठितो, (६) ऽन्नं भूमौ प्रतिष्ठितं, (७) भूमिरप्सु प्रतिष्ठिता, (८) आपो ज्योतिषि प्रतिष्ठिता, (९) ज्योतिर्वायौ प्रतिष्ठितं, (१०) वायुराकाशे प्रतिष्ठितः, (११) आकाशं ब्रह्मणि प्रतिष्ठितं, (१२) ब्रह्म ब्राह्मणे ब्रह्मविदि प्रतिष्ठितम्। यो ह वा एवं वित् स ब्रह्मवित्, पुण्यां च कीर्तिं लभते सुरभींश्च गन्धान् सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्रीसम्पदमुपनिषदमुपास्त इति ब्राह्मणम्।३८।

जो अपने को विद्वान् मानकर यह समझते हैं कि वे यज्ञ को पूरा जानते हैं, वे अज्ञानी हैं। (१) यह यज्ञ वेद में प्रतिष्ठित है। (२) वेद वाक् में प्रतिष्ठित है। (३) वाक् मन में प्रतिष्ठित है। (४) मन प्राण में प्रतिष्ठित है। (५) प्राण अन्न में प्रतिष्ठित है। (६) अन्न भूमि में प्रतिष्ठित है। (७) भूमि अप् में प्रतिष्ठित है। (८) अप् ज्योति में प्रतिष्ठित है। (९) ज्योति वायु में प्रतिष्ठित है। (१०) वायु आकाश में प्रतिष्ठित है। (११) आकाश ब्रह्म में प्रतिष्ठित है। (१२) ब्रह्म ब्राह्मण में प्रतिष्ठित है। जो इस प्रकार जानता है, वह पवित्र कीर्ति तथा सुगन्ध पाता है। वह पाप मुक्त होकर अनन्त श्री भोगता है। जो विद्वान् यह जानकर वेदमाता सावित्री की उपासना करता है, वह वेद सम्पद पाता है। यह ब्राह्मण पूर्ण हुआ।

१०. गायत्री रहस्योपनिषद्-

ॐ स्वस्ति सिद्धम् । ॐ नमो ब्रह्मणे। ॐ नमस्कृत्य याज्ञवल्क्यः ऋषिः स्वयम्भुवं परिपृच्छति। हे ब्रह्मन् गायत्र्या उत्पत्तिं श्रोतुमिच्छामि। अथातो वसिष्ठः स्वयम्भुवं परिपृच्छति। यो ब्रह्मा स ब्रह्मोवाच। ब्रह्मज्ञानोत्पत्तेः प्रकृतिं व्याख्यास्यामः। को नाम स्वयम्भूः पुरुष

इति। तेनाङ्गुलीमथ्यमानात् सलिलमभवत् । सलिलात् फेनमभवत्। फेनाद् बुद्बुदम् अभवत्। बुद्बुदाद् अण्डम् अभवत्। अण्डाद् ब्रह्मा अभवत्। ब्रह्मणो वायुः अभवत्। वायोरग्निरभवत्। अग्नेरोङ्कारोऽभवत्। ओङ्काराद् व्याहृतिरभवत्। व्याहृत्याः गायत्र्यभवत्। गायत्र्याः सावित्र्यभवत्। सावित्र्याः सरस्वत्यभवत्। सरस्वत्याः सर्वे वेदा अभवन्। सर्वेभ्यो वेदेभ्यः सर्वे लोका अभवन्। सर्वेभ्यो लोकेभ्यः सर्वे प्राणिनोऽभवन्।

अथातो गायत्री व्याहृतयश्च प्रवर्तन्ते। का च गायत्री, काश्च व्याहृतयः। किं भूः किं भुवः किं सुवः, किं महः किं जनः किं तपः किं सत्यं किं तत् किं सवितुः किं वरेण्यं किं भर्गः किं देवस्य किं धीमहि किं धियः किं यः किं नः किं प्रचोदयात्। ॐ भूरिति भुवो लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षलोकः। स्वरिति स्वर्ग लोकः। मह इति महर्लोकः। जन इति जनोलोकः। सत्यमिति सत्यलोकः। तदिति तदसौ तेजोमयं तेजोऽग्निर्देवता। सवितुरिति सविता सावित्रमादित्यो वै। वरेण्यमित्यत्र प्रजापतिः। भर्ग इत्यापो वै भर्गः। देवस्य इतीन्द्रो देवो द्योतत इति स इन्द्रस्तस्मात् सर्वपुरुषो नाम रुद्रः। धीमहीत्यन्तरात्मा। धिय इत्यन्तरात्मा परः। य इति सदाशिव पुरुषः। नो इत्यस्माकं स्वधर्मे। प्रचोदयादिति प्रचोदितकाम इमान् लोकान् प्रत्याश्रयन्ते यः परो धर्म इत्येषा गायत्री। सा च किं गोत्रा कत्यक्षरा कति पादा। कति कुक्षयः। कानि शीर्षाणि। सांख्यायन गोत्रा सा चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री त्रिपादा चतुष्पादा। पुनस्तस्याश्चत्वारः पादाः षट् कुक्षिकाः पञ्च शीर्षाणि भवन्ति। के च पादाः काश्च कुक्षयः कानि शीर्षाणि। ऋग्वेदोऽस्याः प्रथमः पादो भवति। यजुर्वेदो द्वितीयः पादः। सामवेदस्तृतीयः पादः। अथर्ववेदश्चतुर्थः पादः। पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति। दक्षिणा द्वितीया कुक्षिर्भवति। पश्चिमा तृतीया कुक्षिर्भवति। उत्तरा चतुर्थी कुक्षिर्भवति। ऊर्ध्वं पञ्चमी कुक्षिर्भवति। अधः षष्ठी कुक्षिर्भवति। व्याकरणोऽस्याः प्रथमः शीर्षो भवति। शिक्षा द्वितीयः। कल्पस्तृतीयः। निरुक्तश्चतुर्थः। ज्योतिषामयनमिति पञ्चमः। का दिक् को वर्णः किमायतनं कः स्वरः किं लक्षणं कान्यक्षरदैवतानि क ऋषयः कानि छन्दांसि काः शक्तयः कानि तत्त्वानि के चावयवाः। पूर्वायां भवतु गायत्री। मध्यमायां भवतु सावित्री। पश्चिमायां भवतु सरस्वती। रक्ता गायत्री। श्वेता सावित्री। कृष्णा सरस्वती। पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौरायतनानि। अकारोकारमकाररूपोदात्तादिस्वरात्मिका। पूर्वा सन्ध्या हंसवाहिनी ब्राह्मी। मध्यमा वृषभवाहिनी माहेश्वरी। पश्चिमा गरुडवाहिनी वैष्णवी। पूर्वाह्नकालिका सन्ध्या गायत्री कुमारी रक्ता रक्ताङ्गी रक्तवासिनी रक्तगन्धमाल्यानुलेपनी पाशाङ्कुशाक्षमाला कमण्डलु वरहस्ता हंसारूढा ब्रह्मदैवत्या ऋग्वेदसहिता आदित्य पथगामिनी भूमण्डलवासिनी। मध्याह्नकालिका सन्ध्या सावित्री युवती श्वेताङ्गी श्वेतवासिनी श्वेतगन्धमाल्यानुलेपनी

त्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा रुद्रदैवत्या यजुर्वेद सहिता आदित्यपथगामिनी भुवो लोके व्यवस्थिता। सायं सन्ध्या सरस्वती वृद्धा कृष्णाङ्गी कृष्णवासिनी कृष्णगन्धमाल्यानुलेपना शङ्खचक्रगदाभयहस्ता गरुडारूढा विष्णुदैवत्या सामवेदसहिता आदित्यपथगामिनी स्वर्गलोकव्यवस्थिता। अग्निवायुसूर्यरूपाऽऽहवनीयगार्हपत्य दक्षिणाग्नि रूपा ऋग्यजुः सामरूपा भूर्भुवः स्वरिति व्याहृतिरूपा प्रातर्मध्याह्नतृतीयसवनात्मिका सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तरूपा वसुरुद्रादित्यरूपा गायत्री-त्रिष्टुब्-जगतीरूपा ब्रह्मशङ्कर-विष्णुरूपेच्छा-ज्ञानक्रियाशक्तिरूपा स्वराड्विराड्वषड् ब्रह्मरूपेति। प्रथमाग्नेयं द्वितीयं प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं चतुर्थमीशानं पञ्चमादित्यं षष्ठं गार्हपत्यं सप्तमं मैत्रमष्टमं भगदैवतं नवमार्यमणं दशमं सावित्रमेकादशं त्वाष्ट्रं द्वादशं पौष्णं त्रयोदशमैन्द्राग्नं चतुर्दशं वायव्यं पञ्चदशं वामदेवं षोडशं मैत्रावरुणं सप्तदशं भ्रातृव्यमष्टादशं वैष्णवमेकोनविंशं वामनं विंशं वैश्वदेवमेकविंशं रौद्रं द्वाविंशं कौबेरं त्रयोविंशमाश्विनं चतुर्विंशं ब्राह्ममिति प्रत्यक्षर दैवतानि। प्रथमं वसिष्ठं द्वितीयं भारद्वाजं तृतीयं गार्ग्यं चतुर्थमौपमन्यवं पञ्चमं भार्गवं षष्ठं शाण्डिल्यं सप्तमं लौहितमष्टमं वैष्णवं नवमं शातातपं दशमं सनत्कुमारमेकादशं वेदव्यासं द्वादशं शुक्रं त्रयेदशं पाराशर्यं चतुर्दशं पौण्ड्रकं पञ्चदशं क्रतुं षोडशं दाक्षं सप्तदशं काश्यपं अष्टादशं आत्रेयं एकोनविंशमगस्त्यं विंशमौद्दालकमेकविंशमाङ्गिरसं द्वाविंशं नाभिकेतुं त्रयोविंशं मौद्गल्यं चतुर्विंशमाङ्गिरसं वैश्वामित्रमिति प्रत्यक्षराणामृषयो भवन्ति। गायत्री-त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् पङ्क्तिर्बृहत्युष्णिगदितिरिति त्रिरावृत्तेन छन्दांसि प्रतिपाद्यन्ते। प्रह्लादिनी प्रज्ञा विश्वभद्रा विलासिनी प्रभा शान्ता मा कान्तिः स्पर्शा दुर्गा सरस्वती विरूपा विशालाक्षी शालिनी व्यापिनी विमला तमोऽपहारिणी सूक्ष्मावयवा पद्मालया विरजा विश्वरूपा भद्रा कृपा सर्वतोमुखीति चतुर्विंशति शक्तयो निगद्यन्ते। पृथिव्यप्तेजो वाय्वाकाश गन्धरसरूप स्पर्श शब्द वाक्यानि पादपायूपस्थत्वक् चक्षुश्रोत्रजिह्वा घ्राण मनोबुद्ध्यहङ्कार चित्तज्ञानानीति प्रत्यक्षराणां तत्त्वानि प्रतीयन्ते। चम्पकातसी कुङ्कुम पिङ्गलेन्द्रनीलाग्नि प्रभोद्यत्सूर्य विद्युत् तारक सरोज गौर मरकत शुक्ल कुन्देन्दु शङ्ख पाण्डु नेत्रनीलोत्पल चन्दनागुरु कस्तूरी गोरोचन घनसार सन्निभं प्रत्यक्षरम् अनुस्मृत्य समस्त पातकोपपातक महापातकागम्यागमन गोहत्या ब्रह्महत्या भ्रूणहत्या पुरुषहत्याऽऽजन्मकृतहत्या गुरुहत्या पितृहत्या प्राणहत्या चराचरहत्याऽभक्ष्यभक्षण प्रतिग्रह स्वकर्म विच्छेदन स्वाम्यार्ति हीनकर्मकरण परधनापहरण शूद्रान्नभोजन शत्रुमारण चाण्डालीगमनादि समस्त पाप हरणार्थं संस्मरेत्।

मूर्धा ब्रह्मा शिखान्तो विष्णुर्ललाटं रुद्रश्चक्षुषी चन्द्रदित्यौ कर्णौ शुक्रबृहस्पती नासापुटे अश्विनौ दन्तोष्ठावुभे सन्ध्ये मुखं नयनः स्तनौ वस्वादयो हृदयं पर्जन्य उदरमाकाशो

नाभिरग्निः कटिरिन्द्राग्नी जघनं प्राजापत्यमूरू कैलासमूलं जानुनी विश्वेदेवौ जङ्घे शिशिरः गुल्फानि पृथिवी वनस्पत्यादीनि नखानि महती अस्थीनि नवग्रहा असृक् केतुर्मांसं ऋतुसन्धयः कालद्वया स्फालनं संवत्सरो निमेषोऽहोरात्रमिति वाग्देवीं गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये।

य इदं गायत्री रहस्यमधीते तेन ऋतु सहस्रमिष्टं भवति। य इदं गायत्री रहस्यमधीते दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातर्मध्याह्नयोः षण्मासकृतानि पापानि नाशयति। य इदं गायत्रीरहस्यं ब्राह्मणः पठेत् तेन गायत्र्याः षष्टसहस्राणि जप्तानि भवन्ति। सर्वान् वेदानधीतो भवति। सर्वेषु तीर्थेषु स्नातो भवति। अपेयपानात् पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति। वृषलीगमनात् पूतो भवति। अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। पङ्क्तिषु सहस्रपानात् पूतो भवति। अष्टो ब्राह्मणान् ग्राहयित्वा ब्रह्मलोकं स गच्छति। इत्याह भगवान् ब्रह्मा।

११. सारांश-गायत्री के चरण तथा देवता-प्रथम चरण-ब्रह्मा, द्वितीय चरण-विष्णु, तृतीय चरण-महेश।

गायत्री के ५ मुख-(१) ॐ, (२) भूर्भुवः स्वः, (३) तत्सवितुर्वरेण्यम्, (४) भर्गो देवस्य धीमहि, (५) धियो यो नः प्रचोदयात्। या ४ वेद +यज्ञ।

महर्षि उद्दालक ने इसी गायत्री विद्या की प्राण-प्रतिष्ठा की थी। गायत्री मन्त्र के ५ मुखों के प्रतीक-(१) ४ वेद +यज्ञ, (२) पञ्चतत्त्वात्मक जगत् एवं देह से पृथक् समझने की साधना, (३) आत्मा के पञ्चकोष आवरण से भी अपने को पृथक् समझना।

(१) ५ कोष, (२) ५ ज्ञानेन्द्रियाँ, (३) ५ कर्मेन्द्रियाँ, (४) ५ प्राण, (५) ५ उपप्राण, (६) ५ तन्मात्रायें, (७) ५ विषय, (८) ५ महाभूत, (९) ५ यज्ञ, (१०) ५ अवस्था, (११) ५ शूल, (१२) ५ क्लेश, (१३) शिव के ५ मुख, (१४) ५ आकाश आदि-

पञ्चस्यास्यास्तु गायत्र्याः विद्यां यस्त्ववगच्छति।

गायत्री का महत्त्व-गायत्र्येव तपो योगः साधनं ध्यानमुच्यते। सिद्धि जनानां सा माता नातः किञ्चिद् बृहत्तरम्।।(गायत्री लहरी, गायत्री मञ्जरी)

गायत्री के ९ पद-(१) तत्, (२) सवितुः (३) वरेण्यं (४) भर्गो, (५) देवस्य, (६) धीमहि, (७) धियो, (८) यो नः (९) प्रचोदयात्। अतः यज्ञोपवीत में ९ सूत्र होते हैं। यज्ञोपवीत में ३ ग्रन्थियाँ ब्रह्मग्रन्थि, विष्णुग्रन्थि एवं रुद्रग्रन्थि-इन देवों के प्रतीक हैं। यज्ञोपवीत गायत्री का एवं द्विजत्व का प्रतीक है। बड़ी ग्रन्थि ॐ की एवं शेष ३ ग्रन्थियाँ भूः भुवः स्वः की प्रतीक हैं। भूः= अन्नमय कोश। भुवः= प्राणमय एवं मनोमय कोश। स्वः =विज्ञानमय-आनन्दमय कोश। सृष्टि के ३ स्तर-पृथ्वी, पाताल, स्वर्ग। साधना के पिण्डगत ३ स्तर-भूः, भुवः, स्वः। अतः गायत्री त्रिपदा है।

गायत्री का निर्गुण ध्यान-गायत्री हृदय में कहा गया है-आत्मान आकाशो भवति, आकाशाद्वायुर्भवति, वायोरग्निर्भवति, अग्नेरोंकारो भवति, ॐकाराद् व्याहृतिर्भवति, व्याहृतितो गायत्री भवति, गायत्र्याः सावित्री भवति, सावित्र्याः सरस्वती भवति, सरस्वत्या वेदा भवन्ति, वेदेभ्यो लोकाः।

छान्दोग्य उपनिषद् (२/१४/४) में इसकी विपरीत प्रक्रिया का ध्यान कहा गया है-सम्पूर्ण लोकों का वेदों में, वेदों का सरस्वती में, सरस्वती का सावित्री में, सावित्री का गायत्री में, गायत्री का व्याहृतियों में, व्याहृतियों का ॐकार में, ॐकार का अग्नि में, अग्नि का वायु में, वायु का आकाश में, एवं आकाश का ब्रह्मस्वरूप अपनी आत्मा में लय करने का ध्यान करें।

गायत्री का स्वरूप-गायत्री पुरश्चरण पद्धति तथा ऊपर लिखे गायत्री रहस्य उपनिषद् में-(१) गायत्री का गोत्र-सांख्यायन, (२) वर्ण-३२। (३) पाद-४, अन्तिम पाद दर्शन रज से परे परोरजा है, अतः ३ पादों की गणना की जाती है। (४) अक्षर-२४, (५) कुक्षि-८ सिर या ८ दिशायें-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व, अधः, अन्तरिक्ष, अवान्तर। ७ सिर या ७ विद्यायें-व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास-पुराण, उपनिषद्। (६) पाद तथा वेद-प्रथम पाद = ऋग्वेद, द्वितीय पाद = यजुर्वेद, तृतीय पाद = सामवेद, चतुर्थ पाद =अथर्ववेद। (७) रूप-पूर्व सन्ध्या-गायत्री, मध्यमा-सावित्री, पश्चिमा-सरस्वती। (८) वेशभूषा-गायत्री बाला कुमारी-रक्तवर्णा रक्तवस्त्रा। सावित्री-श्वेतवर्णा। सरस्वती =कृष्णवर्णा। (९) अङ्ग-हृदय=विष्णु, शिखा = रुद्र, कवच =ब्रह्मादिक। (१०) सर्वरूपा-एक ही गायत्री चिति शक्ति से अनेक रूप धारण करती है।

मनुस्मृति (२/८३)-एकाक्षरं परब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते।

महाभारत, भीष्मपर्व (१४/१६) गायत्री का ज्ञाता नष्ट नहीं होता-
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न विनष्यति।।

पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड १७/२७४)- ब्रह्महत्यादि पापानि गुरूणि च लघूनि च।
नाशयत्यचिरेणैव गायत्री जापको द्विजः।।

शङ्कराचार्य का प्रपञ्चसार तन्त्र (५-८) तथा पद्मपाद का प्रपञ्चसार विवरण-
(१) २४ अक्षर की गायत्री में २४ तत्त्व हैं-चतुर्विंशतितत्त्वभेदैः।
(२) ४ वेदों का सार-अन्वर्थकं मन्त्रमिमन्तु वेदसारं पुनर्वेदविदो वदन्ति।

(३) तार तथा व्याहृति आदि के साथ ही इस पराशक्ति गायत्री की ुपासना की जानी चाहिये-
तार व्याहृति संयुता सहशिरो गायत्र्युपास्या परा।
(४) ७ व्याहृतियों = ७ लोक-(क) भू लोक, (ख) भुव लोक, (ग) स्वर्लोक,(घ) महर्लोक, (ङ) जनःलोक, (च) तपलोक, (छ) सत्यलोक।-
सभूर्भुवः स्वश्च महोजनस्तपः समन्वितं सत्यमिति क्रमेण।
(५) प्रणव ॐ के २ रूप हैं-निर्गुण तथा सगुण।

आचार्य भास्कर ने पञ्चदशाक्षरी विद्या की गायत्री से समता दिखायी है। उसके तीन कूट गायत्री के ३ पाद हैं । प्रत्येक पाद भी पूर्ण मन्त्र का प्रतीक है, जैसा पहले दिखाया गया है। इसका आधार देवी अथर्वशीर्ष का श्लोक है-
कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या।